प्रकाशक—
विजयकुमार मलहोत्रा एम ए
एकमात्र वितरक
ओरिएण्टल बुक डिपो
१७०४ नई सड़क, दिल्ली

मूल्य २॥)

महादेवी की कृति 'नीरजा' की व्याख्या के लिए इसी लेखक की 'नीरजा-विवेचन' नामक पुस्तक पढ़िये। मूल्य ३)

मुद्रक—
हकूमतलाल
विश्वभारती प्रेस
पहाड़गंज, नई दिल्ली

श्रद्धेय गुरुवर

प्रो० विजयेन्द्र स्नातक

को

सादर

को संसार के कण-कण में व्याप्त देखना चाहती हैं। इस तरह से उनकी करुणा का शंकर के अध्यात्म से समन्वय हो जाता है और गद्य और पद्य में एकरसता आजाती है।

लेखक महोदय ने मीरा और महादेवी जी का अन्तर बतलाते हुए कहा है कि मीरा में वैयक्तिक वेदना है और महादेवी के विरह में वेदना के साथ संसार के प्रति संवेदना भी है। महादेवी अपने प्रति वैरागिनी होते हुए भी संसार के प्रति अनुरागिनी भी है। उनका प्रियतम संसार से बाहर नहीं। श्री सत्यपाल जी ने आजकल की तथाकथित पलायन-वादी कविता में भी शुक्ल जी के लोकमंगल की भावना देखी है। इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है किन्तु यह दृष्टिकोण सर्वथा स्वस्थ है। यह पुस्तक श्रीमती महादेवी वर्मा की कृतियों के, विशेषकर नीरजा के, भाव-पक्ष और कला-पक्ष को एक कलामय भाषा में समझाने में सहायक होगी। मैं समझता हूँ कि यह पुस्तक हिन्दी संसार में उचित आदर प्राप्त करेगी।

गोमती निवास
आगरा
२२/१/५६

गुलाबराय

प्रकाशक—
विजयकुमार मलहोत्रा एम ए
एकमात्र वितरक
ओरिएण्टल बुक डिपो
१७०४ नई सडक, दिल्ली

मूल्य २॥)

महादेवी की कृति 'नीरजा' की व्याख्या के लिए इसी लेखक की 'नीरजा-विवेचन' नामक पुस्तक पढ़िये । मूल्य ३)

मुद्रक—
हकूमतलाल
विश्वभारती प्रेस
पहाड़गज, नई दिल्ली

भूमिका

श्री सत्यपाल चुघ ने अपनी 'महादेवी की काव्य-साधना और नीरजा' शीर्षक पुस्तक दिखाने की कृपा की। श्रीमती महादेवी वर्मा आजकल की उन इनी- गिनी कवयित्रियो में से हैं जिन्होने अपने काव्य में विचार और भावना का अपूर्व समन्वय किया है। उनके विचार भावुकता के कारण शक्तिशाली और प्राणवान वने है और भाव विचारो के कारण गम्भीरता प्राप्त कर सके है। वास्तव में भाव विचारो विना अन्धे है और विचार भाव विना पगु रह जाते हैं। महादेवी का भावलोक गम्भीर अध्ययन और विचार की आधार शिला पर स्थित है। लेखक महोदय ने पहले महादेवी जी की भावधारा को स्पर्श किया है, उसके अनन्तर उसके आधारभूत विचारो का विश्लेषण किया है और उनका एक ऐसे सर्वात्मवाद में आधार वतलाया है जो वौद्ध धर्म से प्रभावित अवश्य है किन्तु वह नकारात्मक नही है। वह करुणा-कलित सर्ववाद है।

वौद्धधर्म की करुणा ने ही ब्रह्म का रूप धारण कर लिया है। महादेवी जी की करुणा वैयक्तिक करुणा नही है। वह सार्वजनीन है, इसीलिए वह मगलमय और आनन्द स्वरूप वन सकी है।

लेखक महोदय ने महादेवी जी के सम्वन्ध में इस भ्रान्त धारणा को भी दूर करने का प्रयत्न किया है कि वे पद्य लिखने में पलायन-वादिनी है और गद्य में शोषण और पीडन के प्रति विद्रोहिनी है। श्री चुघ ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है महादेवी जी का ब्रह्म ससार से पृथक् किसी अतीत लोक का ब्रह्म नही है। उन्होने सीमाओ पर गर्व करते हुए सीमाओ में ही असीम के दर्शन किये है। इसलिए वे प्रियतम

भूमिका

श्री सत्यपाल चुघ ने अपनी 'महादेवी की काव्य-साधना और नीरजा' शीर्षक पुस्तक दिखाने की कृपा की। श्रीमती महादेवी वर्मा आजकल की उन इनी- गिनी कवयित्रियो में से हैं जिन्होने अपने काव्य में विचार और भावना का अपूर्व समन्वय किया है। उनके विचार भावुकता के कारण शक्तिशाली और प्राणवान बने है और भाव विचारो के कारण गम्भीरता प्राप्त कर सके हैं। वास्तव में भाव विचारो बिना अन्धे हैं और विचार भाव बिना पगु रह जाते है। महादेवी का भावलोक गम्भीर अध्ययन और विचार की आधार शिला पर स्थित है। लेखक महोदय ने पहले महादेवी जी की भावधारा को स्पर्श किया है, उसके अनन्तर उसके आधारभूत विचारो का विश्लेषण किया है और उनका एक ऐसे सर्वात्मवाद में आधार बतलाया है जो बौद्ध धर्म से प्रभावित अवश्य है किन्तु वह नकारात्मक नहीं है। वह करुणा-कलित सर्ववाद है।

बौद्धधर्म की करुणा ने ही ब्रह्म का रूप धारण कर लिया है। महादेवी जी की करुणा वैयक्तिक करुणा नही है। वह सार्वजनीन है, इसीलिए वह मगलमय और आनन्द स्वरूप बन सकी है।

लेखक महोदय ने महादेवी जी के सम्बन्ध में इस भ्रान्त धारणा को भी दूर करने का प्रयत्न किया है कि वे पद्य लिखने में पलायन-वादिनी है और गद्य में शोषण और पीडन के प्रति विद्रोहिनी है। श्री चुघ ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है महादेवी जी का ब्रह्म ससार से पृथक् किसी अतीत लोक का ब्रह्म नही है। उन्होने सीमाओ पर गर्व करते हुए सीमाओ में ही असीम के दर्शन किये है। इसलिए वे प्रियतम

को ससार के कण-कण में व्याप्त देखना चाहती है। इस तरह से उनकी करुणा का शकर के अध्यात्म से समन्वय हो जाता है और गद्य और पद्य में एकरसता आजाती है।

लेखक महोदय ने मीरा और महादेवी जी का अन्तर बतलाते हुए कहा है कि मीरा में वैयक्तिक वेदना है और महादेवी के विरह में वेदना के साथ ससार के प्रति सवेदना भी है। महादेवी अपने प्रति वैरागिनी होते हुए भी ससार के प्रति अनुरागिनी भी है। उनका प्रियतम ससार से बाहर नही। श्री सत्यपाल जी ने आजकल की तथाकथित पलायन-वादी कविता में भी शुक्ल जी के लोकमगल की भावना देखी है। इस सम्वन्ध में मतभेद हो सकता है किन्तु यह दृष्टिकोण सर्वथा स्वस्थ है। यह पुस्तक श्रीमती महादेवी वर्मा की कृतियों के, विशेषकर नीरजा के, भाव-पक्ष और कला-पक्ष को एक कलामय भाषा में समझाने में सहायक होगी। मैं समझता हूँ कि यह पुस्तक हिन्दी ससार में उचित आदर प्राप्त करेगी।

गोमती निवास
आगरा
२२/१/५६

गुलावराय

मेरा दृष्टिकोण

छायावादी कवियो में सुमित्रानन्दन पत तथा जयशकर प्रसाद पर जितना लिखा जा चुका है उतना निराला और महादेवी पर नही। इन दोनो कवियो पर आलोचनात्मक साहित्य की दरिद्रता एक शोचनीय बात है। मैं समझता हूँ छायावाद की वृहत्त्रयी—प्रसाद, पत, निराला में महादेवी का उपयुक्त स्थान है। इस वृहत्त्रयी की शोभा महादेवी को साथ ले कर ही हो सकती है।

महादेवी पर जो समीक्षात्मक अध्ययन मिलते है उनमें भी प्राय: एकागी दृष्टिकोण से समीक्षाए हुई है। महादेवीके कुछ प्रशसक-आलोचक उन्हें पूरी वैरागिनी-रहस्यवादिनी बना उनका मूल्य कम कर देते है (चाहे उनके अनुसार वढता ही हो)। इस युग की विस्फोटक चेतना के अनुकूल प्राचीन रहस्य-भावना से आज की रहस्य-साधना में विशेष अन्तर आ सकता है। यह समझना आवश्यक है। केवल वैयक्तिक अभावो के आधार पर आलोचना भी स्वस्थ नही कही जा सकती। आलोचना का माप मान व्यापक होना चाहिए क्योकि आजके जटिल जीवन की आलोचना एकागी प्रभावो के आधारो पर करना मानव के अन्तर्वाह्य सघर्प-विघर्प से अनभिज्ञता का परिचय देना है। ऐसे आलोचक भी हैं जिनके अनुसार महादेवी ने कही भी युग-जीवन अथवा स्वजीवन सम्बधी विचार प्रकट करने की चेप्टा नही की। स्यात् गीति काव्य की इस प्रकृति की ओर उनका ध्यान नही गया कि उत्कृप्ट गीतिकाव्य में युगजीवन इस रूप में नही आ सकता जैसा कविता के अन्य प्रकारो में। गीतिकाव्य में समाज से प्रभावित होने के पश्चात् समाज गौण हो जाता है, तज्जन्य रागात्मक अनुभूति ही प्रमुख हो जाती है। कुछ समीक्षक ऐसे भी है जो महादेवी में 'आँसू' शब्द को

देखकर ही उन्हें निराशावादी मानने लगते हैं, वेदना के स्वरूप की ओर उनकी दृष्टि नही जाती। महादेवी के गद्य और पद्य का भाव-वैषम्य भी कुछ विद्वानो को आश्चर्यचकित कर देता है। श्रद्धेय गुलाबराय जी ने अपनी भूमिका लिख कर मेरे दृष्टिकोण को स्पष्ट कर ही दिया है।

मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है वह सम्पूर्ण या अंतिम नही है। जिन आलोचको का मैंने ऊपर उल्लेख किया है उन्हीं से मैं उत्प्रेरित-उत्साहित भी हुआ हूँ। उनकी आलोचनाओ में ही मुझे ऐसे तत्त्व मिले हैं जो मेरा दिशा-निर्देशन कर सके। इसलिये मैंने अन्य आलोचको के मत उन्ही के शब्दो में दिये हैं ताकि मेरा नूतन दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो सके। वैसे तो मैंने महादेवी की सभी कृतियों के उदाहरण दिये हैं किन्तु विशेष दृष्टि नीरजा पर रही है।

महादेवी की उत्कृष्ट कृति नीरजा की व्याख्या इसलिये की है क्योकि महादेवी के अर्थ उनकी भावधारा के समान ही रहस्य बने रहे है। नीरजा की व्याख्या करने में मैंने सर्वप्रथम महादेवीजी के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि को भी उचित महत्त्व दिया है। नीरजा की व्याख्या करना मेरा एक प्रयास है। मैं इसे एक प्रयास ही कहूँगा क्योंकि इस दिशा मे मुझे पूर्ण संतोष नहीं। तात्पर्य यह है कि महादेवी की व्याख्या मे कही और अधिक सौन्दर्य आ सकता है और इसकी ओर मैं प्रयत्न शील भी रहूँगा। इस दृष्टि से मैं विज्ञ पाठकों-आलोचको की सम्मतियों का सहर्ष स्वागत करूँगा।

समयाभाव के कारण महादेवी के अनेक पक्षो पर प्रकाश नही डाला जा सका। उनके रहस्यवाद तथा सुन्दर लौकिक रूपको पर फिर कभी लिखूँगा।

महादेवी ने अलौकिक प्रियतम को अनेक सम्बोधन दिये हैं। यथा —देव, निर्मम, निष्ठुर, वेपीर, करुणामय, प्रिय आदि। इन पर भी लिखना आवश्यक है। यह उल्लेखनीय है कि नीहार-रश्मि में प्राय 'देव' सम्बोधन ही आया है जो कि प्रियतम की महानता तथा साधिका की श्रद्धा का परिचायक है। नीरजा में 'प्रिय' सम्बोधन ही अधिक है। महादेवी की प्रारम्भिक कृतियो में एकान्त निराशा का प्रसार देखने वालो को यह कुछ इगति कर सकता है। महादेवी में केवल लौकिक प्रेरणा होती तो पहली कृति में देव के स्थान पर प्रिय अथवा निर्मम शब्द ही होता। और बाद में वैयक्तिक अभावो के उदात्तीकरण के अनुरूप 'देव' सम्बोधन आता। किन्तु ऐसा नही हुआ।

यदि विद्वानो की ओर से उत्साह मिला तो महादेवी की अन्य कृतियो पर लिखने का प्रयत्न भी करूंगा।

अन्त में मैं उन सभी आलोचको का आभार स्वीकार करता हूँ जिनकी कृतियो से मैंने ज्ञात-अज्ञात रूप से प्रेरणा ग्रहण की है। वस्तुतः यदि इस पुस्तक में मुझे कुछ भी सफलता मिली है तो उसका श्रेय मेरे गुरुवरो— डा० नगेन्द्र, प्रो० विजयेन्द्र स्नातक तथा डा० ओमप्रकाश को है। गलतिया मेरी अपनी हैं। इनके अनुप्रेरण-उत्साहन से ही मैं ने लिखने का कुछ साहस किया है। श्रद्धेय गुलावराय जी का भी हार्दिक आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होने अस्वस्थ होने पर भी भूमिका लिखने का कष्ट किया।

के० एम० कालिज, दिल्ली। सत्यपाल चुघ

३/२/५६

विषय-क्रम

महादेवी की कृतियाँ

श्रीमती महादेवीजी वर्मा हिन्दी साहित्य की करुणा-प्रधान महान् कवयित्री है। उनकी काव्य-कृतियाँ काल-क्रमानुसार निम्नलिखित है—

(१) नीहार—रचना-काल १९२४—१९२८ गीत सख्या-४७
(२) रश्मि „ १९२८—१९३१ „ „—३५
(३) नीरजा „ १९३१—१९३४ „ „—५८
(४) साध्यगीत „ १९३४—१९३६ „ „—४५

इन चारो कृतियो का सकलन 'यामा' नाम से १९३६ में प्रकाशित हुआ जिसमें एक सौ पचासी गीत है।

(५) दीपशिखा—रचना-काल १९३६—१९४२ (गीत स० ५१)।

१९४६ में वगाल के अकाल पर अनेक कवितायें लिखी गई। प्रयाग महिला विद्यापीठ (महादेवी जिसकी मुख्याध्यापिका है) द्वारा इन कविताओ का सकलन 'वग दर्शन' नाम से प्रकाशित हुआ। उनमें भी महादेवी की एक कविता 'वग-वदना' नाम से है।

यामा की भूमिका में महादेवी लिखती है—"यामा में मेरे अतर्जगत् के चार यामो का छायाचित्र है। ये याम दिन के है या रात के यह कहना मेरे लिये असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।" फिर भी कृतियो के नामो और उनकी भावनाओ में एक ऐसा क्रमिक विकास परिलक्षित होता है (जैसा असगतियो के कारण बहुत कम कवियो में मिलता है) कि यह कहा जा सकता है, ये याम (पहर) दिन के है रात के नही, जैसा कि विश्वभर मानव का भी मत है। नीहार की कुहेलिका (धुंधलेपन) में वह अभी मार्ग खोज रही है। पथिक निराश भी है किंतु

यह ऐसी निराशा नही जो पथिक को गत्यवरुद्ध कर दे। उस 'देव' 'वेपीर' के निराशा के झोको ने 'मानस-कुञ्जो' में 'धूल' अवश्य भर दी है (यामा पृष्ठ ४०) किन्तु इस धूल में पुष्प का पराग भी है। उसकी 'आँखें' छलक रही है, किन्तु 'ओठ' हँस रहे हैं। उनकी 'तरी' 'हाहाकार' करती हुई 'पर्वताकार तरगो' से घिरी हुई अवश्य है किन्तु उनके पास 'डूबकर पार उतरने' का महामत्र तथा 'विसर्जन' का 'कर्णधार' भी है (यामा पृष्ठ १८,१९)। अतएव नीहार की नीहारिका सध्या की कालिमा नही जो उनको मार्ग न मिल पाता। इसलिये 'नीहार' के भीतर से ही 'रश्मि' आलोक फैलाती हुई आई और आगे का पथ प्रशस्त हो गया। 'नीहार' में आगामी कृतियो में लक्षित-विकसित सभी भावनाएँ मिल जाती है। यथा—त्याग भावना (यामा पृ० १९), विश्व के प्रति सवेदना (यामा पृ० ३३), अलौकिक प्रियतम के प्रति विरह, वैराग्य भावना (या० पृ० ३८), ससार की असारता (यामा पृ० २९), मुक्ति की उपेक्षा (यामा पृ० ७), साधना तथा अतृप्ति-प्रियता (पृ० ३२), दुख में अज्ञात प्रिय को खोजना (३१) इत्यादि।

'रश्मि' के तरुण-अरुण वाण ने नीहार के कुहर-म्लान क्षितिज को भेद दिया और सारा भेद स्पष्ट हो गया। रश्मि ज्ञान की रश्मि सिद्ध हुई। इसके प्रकाश में कवयित्री ने ससार के रहस्यो को सुलझाना प्रारम्भ किया। इस ससार को किसने, कैसे और क्यो निर्माण किया, आत्मा-परमात्मा में क्या सम्बन्ध है आदि दार्शनिक प्रश्न आलोकित हो उठे। यही नही समग्र वातावरण आशा के प्रकाश से जगमगा उठा। अब अश्रु-हास दोनो मिलकर चित्राकन करने लगे (रश्मि की प्रथम कविता)। 'जीवन की सरिता' 'विरह-मिलन के पुलिनो (यामा पृष्ठ ७६) में सहज-सतुलित रूप में प्रवाहित होने लगी। अब वृत्त (घेरा) भी विस्तृत हो गया। प्रियतम से मिलने के बहाने विश्व के 'कण-कण' से परिचित होने की आकाक्षा जगी (७७)। अब यह प्रश्न

उपस्थित हो गया कि माँ (प्रकृति) के वैभव को देखे या पर-जीवन के क्रन्दन को सुने (१००)।

'रश्मि' से 'नीरजा' खिल उठी जो राजसिकता-तामसिकता के सलिल-पक से मुक्त हो गई। 'नीरजा' की प्रथम कविता में ही साधना-साध्य सात्विक भावनाओ के सम्बन्ध में कोमल गर्वोक्ति हुई है। अब उन्होने जीवन के चरम सत्य हृदयगम कर लिये हैं। वे दो हैं —(१) अज्ञात प्रियतम की 'सुधि का दशन', (२) विश्व के प्रति करुणा-प्यार (नीरजा कविता ३५)। दीपवत् मधुर-मधुर निरतर जलकर प्रियपथ को प्रकाशित करने का आग्रह बढ गया है। 'कौन तुम मेरे हृदय में' के कौतूहल के साथ 'तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?' का विश्वास भी हो गया है। इस कृति में मीरा (नीरजा कविता २१), बुद्ध और कृष्ण (नी० ५३) को स्मरण किया गया है। लौकिक काम-नाओ का कर्दम न होते हुए भी लौकिक रूपको की रुचिरता चरम सीमा पर है।

'नीहार' और 'रश्मि' का 'देव' अब एकदम 'प्रिय' हो गया है। ब्रह्म के सम्बोधन मे परिवर्तन ही प्रणय की तीव्रता को व्यक्त कर रहा है।

नीरजा' ने दिन भर साधना की, सन्ध्या आई और 'साध्य गीत' गाया गया। 'रश्मि' और 'नीरजा' के समान ही इस कृति का प्रथम गीत 'प्रिय साध्य गगन मेरा जीवन' साधना की उन्नत स्थिति को व्यक्त कर रहा है। अब 'सध्या' विश्राम की आशा चाहे दिलाये, महादेवी का साधना-पथ पर विश्वास और भी बढ गया है। जब साधन ही साध्य, विरह ही आराध्य हो जाये तब प्रिय से पृथकता कैसी ?—द्वैत कैसा और बाधा कैसी ? साध्यगीत की अनेक कविताओ में दो भाव प्रबल रूप से व्यक्त हुए हैं—'इस पार' ही मुक्ति की कामना तथा चिर साधना में 'सतोष भावना'। इस दृष्टि से 'देव अब वरदान

कैसा' तथा 'क्यो मुझे प्रिय हो न वन्धन' कविताएँ साध्यगीत की भावना का प्रतिनिधित्व कर रही है। वस्तुत साधना-पथ और उसमें आने वाले सुख-दु ख सव 'मधुर प्रिय' की भावना से मधुर हो गये हैं (२२१)। विश्व के क्रन्दन की ओर जागरूकता (२३४, २३६) और भी वढ गई है। महादेवी साधना-पथ में साधक के लिये कौन से गुण अपेक्षित मानती हैं 'ओ चिर महान्' कविता इस दृष्टि से पठनीय है। 'साध्य गीत' के गीतो की पृष्ठभूमि—सध्या—निश्चित-सी है।

सध्या के वाद 'यामा' (रात्रि) आई और फिर 'दीपशिखा' प्रज्ज्वलित हो उठी। 'दीपशिखा' में सर्वाधिक रचनाएँ दीपक पर हैं। दीप आत्मा का प्रतीक है। इस 'साँझ के दूत' दीप को उस समय तक निष्कम्प जलने के लिये कहा गया है जव तक प्रभाती अथवा विहान (प्रभात वेला अथवा परमात्मा की आभा) न आ जाये क्योकि वह 'रात के उर' मे 'दिवस की चाह का शर' लिये हुए है। दीपशिखा में विचारात्मकता अधिक है। साधना-पथ में अदम्य उत्साह यहाँ देखने योग्य है। अव चाहे 'रात घिरती रहे' क्योकि हर 'पलक-पात' में प्रात से भेंट हो रही है इसलिये 'शेप कितनी रात' का प्रश्न अव नही उठता। ससार के लिए आलोक वितरण करते हुये दीपशिखा अज्ञात प्रियतम के लिए 'अचचल-निष्कम्प' रूप में 'घुल-जल' रही है। अव 'विहान' अथवा प्रभाती अवश्य आये—यही कामना-प्रार्थना है।

महादेवी की भावधारा

जीवन का हर्ष-विषाद, हास्य-रुदन ही तो गीत है । ये हर्ष-विमर्ष भी जीवन के घात-प्रतिघातो का परिणाम है जिनमें कभी हमारी अतृप्त आकाक्षाएँ कराह और कभी सुखात्मक अनुभूतियाँ मुस्कुरा उठती हैं। इन्ही के भीतर से जीवन को देखने-समझने का एक दृष्टिकोण उभर उठता है जिसके साथ यदि व्यक्ति का विश्वास जुड जाए तो उस 'सकल्पात्मक अनुभूति' की सृष्टि होती है जो कविता की जननी है। अत-एव गीतिकाव्य में जीवन-दर्शन का उपयुक्त स्थान है। ऐसा इसलिये कि कवि के दर्शन और जीवन के प्रति उसकी आस्था में भेद असम्भव है। यदि यह भेद हुआ, तो कवि काव्य में अपनी अनुभूति के प्रति अविश्वासी होगा और इस स्थिति में किसी भी उत्कृष्ट काव्य का सृजन असम्भव है ।

गीति-कवयित्री महादेवी की भावधारा के सम्बन्ध में आलोचना-जगत में जितनी भ्रान्तियाँ है, शायद ही उतनी किसी के सम्बन्ध में हो।

कमलेश जी को इन्टरव्यू देते हुए वे कहती है "सघर्ष हमारा प्राण है और वह हमें करना है। आगे भी करेंगे । विना सघर्ष जिन्दा कौन रहा है ? जीवित रहने के लिए सघर्ष करना हमारे विद्रोही स्वभाव की विशेषता है । यह विद्रोह हमने पढते-पढते ही सीख लिया था। मैं महिला विद्यापीठ में उसी विद्रोह को क्रियात्मक रूप दे रही हूँ। इस क्रियात्मक जीवन में मुझे व्यस्त रहना पडता है और मैं उस व्यस्तता में ही जीवन का आनन्द खोजती रहती हूँ। मुझे प्रतिक्षण इस

यह युग बुद्धिवाद का युग है। बुद्धिवाद, आदर्शवाद अथवा अध्यात्मवाद का विरोधी नही किन्तु वह अपनी कसौटी पर अतीत के आदर्शों को कसता है। बुद्धिवाद की दृष्टि से विरक्तिपरक अध्यात्म इस युग की माग के अननुकूल है। समाज से विलग होकर हम विजन वन में मोक्ष नही पा सकते और मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है—बुद्धिवादी को यही आध्यात्मिक आदर्श इस युग के अनुकूल जान पडा। विवेकानद, गाँधी और रवीन्द्र के बौद्धिक अध्यात्म ने मानव सेवा का पाठ ही पढाया।

विवेकानन्द के अनुसार "मानव में ईश्वर का दर्शन ही सच्चा दर्शन है।" रवीन्द्र की गीताजलि में भी यही स्वर मुखरित हुआ। रवीन्द्र के एक गीत 'नैवेद्य' का मूल भाव है "वैराग्य साधन से मुक्ति ? अरे वह मेरी नही है। मैं तो ससार के असख्य बन्धनो में ही मुक्ति का आनन्द पा लूँगा। गीताजलि में एक ओर लौकिक प्रेम के रूपको में दिव्य—अलौकिक रति की अनुभूतियाँ है, रहस्यमयता है और दूसरी ओर युगानुरूप अध्यात्म का परम्परा-मुक्त दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। यथा गीताजलि की निम्न पक्तियो में—

भजन पूजन साधन ग्राराधना समस्त थाक पडे
रुद्ध द्वारे देवालयेर कोरमे केन आछिस ओरे।
ग्रन्धकार लुकिये आपन् मने,
काहारे तुइ पूजिस सगोपने।
नयन मेले देखि-देखि तुइचेमे,
देवता नाइ घरे।

"तू भजन, पूजन, साधन, आराधन मत्र रहने दे। पुजारी तू मदिर का द्वार वद किये, उसके कोने में अपने मन के एकान्त अन्धकार में मूक-च्न मे किसकी पूजा में मलग्न है ? आँख खोलकर देख भगवान कहाँ नही है' महादेवी भी आध्यात्मिक अवश्य है किन्तु मीरा की तरह

सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप।
करुणा के दुलारे जाग।

\+ + + +

रात के पथ हीन तम में मधुर जिसके श्वास,
फैल भरते लघुकर्णों में भी असीम सुवास।
कटकों की सेज जिसकी आसुओं का ताज,
सुभग हँस उठ उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज।
बीती रजनी प्यारे जाग।

—नीरजा

यह पलायन है या जागरण? यह जीवन से पलायन नही जीवन मे प्रवेश है This is an escape into life, not from life। वस्तुत यह पलायनवाद नही प्रवृत्तिवाद है। उनकी करुणा बौद्धिक करुणा नही। जग के कण-कण को जानकर, उनके क्रन्दन को पहचानकर करुणा ढुलकती है[1]। जग के दागो को धो-धोकर ही उसकी काया की छाया गहरी होती है। जिसमें जग के सघर्षों से जूझने की शक्ति न हो वही निर्जन गह्वर की वाछा कर सकते है, पलायनवादी बन सकते है, महादेवी नही जो कठोर बनकर पूर्ण शक्ति से सुख-दुख का स्वागत कर सकती है—

जिसको पथ शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर।
प्रिय के सन्देशो के वाहक,
मैं सुख दुख भेटूगी भुजभर।
मेरी लघु पलको से छलकी,
इस कण-कण में ममता बिखरी।

—सान्ध्यगीत

१ दीपशिखा ५१।

ये पक्तियाँ तुलसी की निम्न पक्तियो का स्मरण दिलाती है—

को जाने को जैहै सुरपुर पर धाम को।
तुलसीदास, वहुत भलो लागत जगजीवन राम गुलाम को ॥

महादेवी को दुख का वह रूप तो प्रिय है ही जो सहानुभूति और समता वढाता है, आत्मा का विस्तार करता है "मनुष्य के सवेदनशील हृदय को सारे ससार से एक अविच्छिन्न वन्धन में वाँध देता है[1] ।" और दूसरा वह रूप भी प्रिय है "जो काल और सीमा के वन्धन में पडे हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।"[2] इसी क्रन्दन में वह करुणा भी सम्मिलित है जो जीवन-वैपम्य और ससार की असारता[3] से उत्पन्न होती है। यदि मनोवैज्ञानिको की भाषा में कहा जाय तो व्यक्तिगत अभावजन्य वेदना का काव्य में उन्नयन अथवा पर्युत्थान हो जाता है। इस दुख के तीसरे स्वरूप ने महादेवी के पहले दो दुखो को और भी तीव्र वनाया है। अवश्य ही व्यक्तिगत अभावो का, काव्य पर प्रभाव पडता है किन्तु इसको प्रवल प्रभाव के रूप में ही ग्रहण करना चाहिये, मूल के रूप में नही। जीवन पर पडे हुए अन्य प्रभावो-सस्कारो को कैसे भुलाया जा सकता है ? महादेवी स्वभावत-सस्कारत अनुभूतिमयी तथा करुणाशील है। सामाजिक गत्यवरोध ने करुणा को और घनीभूत कर दिया है। अतएव यदि महादेवी जी गृहिणी या माता होती तो भी उनके काव्य के स्वरूप में विशेष अन्तर न आता, वह करुणा-वहुल ही होता क्योकि यह उनकी मूल प्रवृत्ति है, सास्कारिक प्रवृत्ति है, केवल व्यक्तिगत अभाव-जन्य नही। माता अथवा गृहिणी होने की स्थिति मे ध्यान वँट जाता है और काव्य की तीव्रता अवश्य कम हो जाती किन्तु स्वरूप में परिवर्त्तन सम्भव नही

---

१ रश्मि की भूमिका।
२ वही, रश्मि की भूमिका।
३ यथा पृष्ठ २६, ३०, ४२ यामा, नीहार ।

था। कमलेश को इण्टरव्यू देते हुये वे कहती हैं, "उनमें (गीतो में) करुणा की अधिकता इसलिये है कि बुद्ध का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पडा है। मैं वचपन में भिक्षुणी होना चाहती थी और आज भी वह लालसा ज्यो की त्यो वनी है। लेकिन अपने जीवन से भी मुझे पूर्ण सन्तोप है। भिक्षुणी वनकर पूर्ण स्वतन्त्र हो जाती, पर आज भी मैं कम स्वतन्त्र नही हूँ। जो मैं चाहती हूँ वही तो होता है। मेरी जीवन यात्रा वडी सुखद है। सामाजिकता का यह रूप जो मैंने अपनाया है, वह इसलिए कि वह मेरे मन के अनुकूल पडता है। तभी तो मैं भिक्षुणी न होने पर सन्तुष्ट हूँ। आरम्भ में विधवा आदि विषयो पर मैंने लिखा ही है। ये ही विषय सामने भी थे।"

महादेवी पर अद्वैतवाद का प्रभाव भी स्पष्ट है यथा—

(क) तुम हो विधु के विम्ब और मैं,
मुग्धा रश्मि अजान।
जिसे सींच लाते अस्थिर कर,
कौतूहल के वाण।
ओस धुले पथ में छिप तेरा,
जव आता आह्वान।
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में,
होती अन्तर्धान।

—रश्मि

(ख) मैं तुम से हूँ एक-एक हैं।
जैसे रश्मि प्रकाश ॥

—रश्मि

(ग) चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम।
. . . . ॥

—नीरजा

शकर के अद्वैतवाद ने भी वुद्ध के समान ससार को दु:खमय स्वीकार किया है। किन्तु अद्वैतवादी ससार को मिथ्या समझते हुए भी उससे इस प्रकार का द्वेष नही रखते कि ससार विलीन हो जाय। महादेवी सर्वात्मवादी भी तो हैं। इस वाद के अनुसार सर्वत्र एक ही आत्मा विद्यमान है। सर्वात्मवाद में अद्वैतवादियो का-सा जगत् का निषेध नहीं है। इसमें ब्रह्माण्ड की सत्ता (व्यक्त पक्ष) को भी ग्रहण किया जाता है। 'नीरजा' की निम्न उक्तियो में सर्वात्मवादी धारणा स्पष्ट है—

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पदन।
यह रज क्या ? नव मेरा मृदु तन,
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण।
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन,
मेरे सब-सब में प्रिय तुम।
किससे व्यापार करूँगी मैं,
आँसू का मोल न लूँगी मैं।

अतएव वुद्ध मत की करुणा से इनके अद्वैतवाद तथा सर्वात्मवाद कुछ विरोध नही।

वस्तुत अद्वैत का ब्रह्म ही वुद्धमत में करुणा वन गया है। (केवल समझने के लिए वैसे तो वुद्ध मत का जन्म शकर-अद्वैतवाद से पहले हुआ था) महादेवी का ब्रह्म भी करुणामय है। इस प्रकार जो दु:ख सावन है, वह कभी आराध्य भी वन गया है और वह ब्रह्म को भी दु:ख रूप में पाना चाहती है। यथा—

तुम दुख वन इस पथ से आना।
शूलों में नित मृदु पाटल सा,

क्या हार बनेगा वह जिसने .
सीखा न हृदय को बिंधवाना ।

—नीरजा

यहाँ मानो बौद्ध और अद्वैत दर्शन का सम्मिलित प्रभाव है। इस प्रकार उनके ससार के प्रति कारुण्य भावना और 'चिर-सुन्दर' की में उपासना कोई विरोध नही। यह एक-दूसरे के पूरक है। इस तथ्य का सजग प्रमाण नीरजा का निम्न गीत है—

तुम्हें बांध पाती सपने में ।
तो चिर जीवन प्यास बुझा ,
लेती इस छोटे क्षण अपने में।
पावस घन सी उमड बिखरती ,
शरद निशा-सी नीरव घिरती।
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू कण अपने में।
तुम्हे बांध पाती सपने में ,
मधुर राग बन विश्व सुनाती,
सौरभ बन कण-कण बस जाती।
भरती मैं मसृति का क्रन्दन
हस जर्जर जीवन अपने में ,
तुम्हें बांध पाती सपने में ।

इस प्रकार प्रियतम का क्षण भर के लिये साक्षात्कार क्या है मानो जग के विपाद को धोना है और हँसते-हँसते अपने जर्जर जीवन में ससार के क्रन्दन को भरना है। निम्न पक्तियो में भी वह अपने प्रियतम से यही वरदान मांगती है—

प्रिय जिसने दुख पाला हो।
जिन प्राणों में लिपटी हो पीडा सुरभित चदन सी
तूफानों की छाया हो जिसको प्रिय आलिंगन सी।
जिसकी जीवन की हारे हों जय के अभिनन्दन सी,
वर दो मेरा यह आँसू,
उसके उर की माला हो।

सारे ससार में प्रियतम-दर्शन के कारण वह वैरागिनी नही वन सकती और विस्तृत विश्व के साथ तादात्म्य ही तो विराट् प्रियतम से तादात्म्य है। 'रश्मि' की इन पक्तियो में यह तथ्य नितान्त स्पष्ट है—

तुम मानस में बस जाओ,
छिप घन की अवगुण्ठन से।
मैं तुम्हें ढूँढने के मिस,
परिचित हो लूँ कण-कण से।

इन पक्तियो में दु ख का स्वरूप भी स्पष्ट है।

विश्व के प्रति करुणा भावना तथा अज्ञात प्रियतम से मिलनोत्कण्ठा का साधन है जलना अथवा त्याग। अनेक कविताओ में इसी साधना की महिमा है। महादेवी को घन और दीपक इसलिए प्रिय है क्योकि एक स्वय घुलकर तथा दूसरा जलकर अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करते है।

जीवन-स्वर्ण को जला-जला और तपा-तपाकर ही खरा किया जा सकता है—

हीरक सी वह याद,
बनेगा जीवन सोना।
जल-जल तप-तप किन्तु,
इसको है होना।

महादेवी की यह मूल भावना कितनी पुरानी है, इस सम्बन्ध में वह 'यामा' की भूमिका (सन् १९३९) में लिखती है—"नीहार में सब से पुरानी रचना सम्भवत 'उस पार' है उसकी सहज भाव से लिखी—

विसर्जन ही है कर्णाधार,
वहीं पहुँचा देगा उस पार।

आदि पक्तियाँ आज भी मेरे हृदय के उतनी ही निकट हैं जितनी तब थी।" नि सन्देह 'उस पार', के मारुत में भी 'त्याग का गान' है और यही जीवन का व्याख्यान भी है—

तरी को ले जाओ मँझधार,
डूब कर हो जाओगे पार।

—नीहार १६

'मधुवेला' में 'जीवन-पाटल' की सार्थकता इसीमें है कि विश्व के प्रति 'करुणा प्यार' से अभिभूत हो अपने कोषो को रीता करके झर जाए—अमर हो जाए।

महादेवी मुक्ति को भी बन्धन के रूप में देखना चाहती है—

आज वर दो मुक्ति आवे
बन्धनों की कामना लें।

महादेवी भी मोक्ष या 'निष्क्रिय लय' नही चाहती। अन्य अनेक कविताओ में यही भावना व्यक्त हुई है —

(क) जिसमें कसक न सुधि का दशन
प्रिय में मिट जाने के साधन
वे निर्वाण मुक्ति उनके
जीवन के शत बन्धन मेरे हो।
झरते नित लोचन मेरे हो।

—नीरजा

(ख) क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन ?
वीन-बन्दी तार की झंकार है आकाश चारी।
धूल के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिरहारी।
बाँधती निर्बन्ध को मैं।
व दिनी निज बेड़ियाँ गिन ?

—साध्य गीत

"आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी ससार के लिये गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिये सन्यासी होकर भी सब के लिए कर्मयोगी होना होगा। क्योकि आज उसे अपने आपको खोकर पाना है।"

—आधुनिक कवि की भूमिका

किन्तु यह भावना केवल महादेवी की ही नही। यह इस युग की सामान्य भावना है, भारतेन्दु से ही इसका प्रारम्भ हो गया था!

अहो नन-नद गिरवर धरो आज फेर।
हिन्दुन के नैन नीर निसदिन बरें॥

भक्त की वाणी में यह राष्ट्रीयता का नूतन स्वर है। तात्पर्य यह कि आध्यात्मिकता, राष्ट्रीयता अथवा पर हित की विरोधी नही इसी प्रकार चतुर्वेदी जी कहते हैं—

जब निशदिन अलख जगाता हूँ।
तब नई प्रार्थना क्या होगी॥

यहाँ पर सेवा और ईश्वर सेवा अभिन्न हो गई। निम्न कवियो में भी यही भावना परिलक्षित होती है—

भव भावे मुझको, और उसे मैं भाऊँ।
कह मुक्ति भला किसलिये तुझे मैं पाऊँ॥

—गुप्त ,यशोधरा

वैराग्य साधने मुक्ति से अमारनय,
असख्य बधन माझे महानन्दमय।
लभिवो मुक्तिर स्वाद्र एई वसुधार,
मुक्ति कर पाथ खानि मरि बारम्बार।

—रवीन्द्र

तप रे मधुर-मधुर मन,
विश्व वेदना में तप प्रतिपल।
तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन,
गन्धहीन तू गन्धयुक्त वन।
निज अरूप में भर स्वरूप मन।

—पन्त, गुञ्जन

अविराम प्रेम की वाहों में।
है मुक्ति यही जीवन वन्धन॥

—पन्त, ज्योत्स्ना

जग की सेवा करना ही बस,
है सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के वन्धन में ही,
मुझको मिला मुक्ति का द्वार।

—गोपालशरणसिंह

ससार से ऊपर उठने की अथवा वैराग्य की भावना जो कुछ कविताओ में अभिव्यक्त हुई है वह केवल इसलिये कि परमात्मा से मिलने अथवा ससार-सेवा के हेतु सामान्य सासारिक गुणो से ऊपर उठना आवश्यक है। साधना के कठिन-कठोर मार्ग पर चलने के लिये साधक के लिये लौकिक माया-जाल वाधक न वने। इसके लिए सयम और वैराग्य की आवश्यकता स्वाभाविक है। वस्तुत यह वैराग्य शील का पर्याय है।

महादेवी की सजल-स्नेहिल सक्रिय आस्तिकता अनेको कविताओ में दृष्टिगत होती है—

मेरे हँसते अधर नहीं जग—
की आसू-लड़ियां देखो !
मेरी गीलें पलक छुओ मत,
मुरझाई कलियां देखो ! —नीरजा

ये मुरझाई कलियाँ और कोई नही, वही नारियाँ है जिनके लिये महादेवी जी ने 'शृ खला की कडियाँ' में लिखा है "हमारे समाज के पुरुष का विवेक-हीन जीवन का सजीव चित्र देखना है तो विवाह के समय गुलाव-सी खिली हुई स्वस्थ वालिका को पाँच वर्ष वाद देखिये, उस समय इस असमय प्रौढ हुई दुर्वल सतानो की रोगिणी पीली माता में कौन-सी विवशता कौन-सी रुला देने वाली करुणा न मिले।" 'एक वार' कविता में महादेवी भारत की दारुण दु खद दशा पर क्रन्दन कर उठी हैं—

मैं कम्पन हूँ तू करुण राग,
मैं आसू हूँ तू है विषाद।
मैं मदिरा तू उसका खुमार,
मैं छाया तू उसका आधार।
मेरे भारत मेरे विशाल,
मुझको कह लेने दो उदार।
फिर एक वार वस एक वार !

× × × × ×

कहता है जिनका व्यथित मौन,
हम-सा निष्फल है आज कौन।
निर्धन के धन-सी हास-रेख,
जिनकी जगने पाई न देख।

उन सूखे ओठो के विषाद,
र ा दो हे उदास।
फिर एक बार, बस एक बार।

यह उल्लेखनीय है कि ये पंक्तियाँ उनकी प्रथम रचना 'नीहार' की हैं।

इसी उक्त भावना से प्रेरित होकर वह स्वय आँसुओ का क्षार पीकर विश्व को 'स्नेह का रस' बाँटती है और अपनी करुणा की बरसात से तापित-शापित विश्व को हरा-भरा करना चाहती है—

ताप जर्जर विश्व उर पर,
तूल से घन छा गये भर।
दु ख से तप हो मृदुलतर,
उमडता करुणा भरा उर।
सजनि मै इतनी सजल, जितनी सजल बरसात।

—साध्य गीत

नि स्सन्देह वह 'नीर भरी दुख की बदली' है, पर किसलिये ? रज-कण को निज जल-कण से नवजीवन-अकुर देने के लिये, व्यथित विश्व को सुख से स्पदित करने के लिये। जैसे महादेवी को घन प्रिय है वैसे ही दीपक उससे भी अधिक, क्योकि वह स्वय जलकर दूसरो को प्रकाश देता है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल,
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल।
प्रियतम का पथ आलोकित कर। —नी

"इन पंक्तियो मे नीरजा की मूल भावना व्यक्त हो रही है। इस गीत मे दीपक कवि के व्यक्तित्त्व का प्रतीक है। अपने सुकुमार कोमल शरीर को, अपने जीवन के प्रत्येक अणु को, दीपक की भाँति

जलाती हुई कवयित्री अपने प्रियतन का पथ आलोकित करना चाहती हैं। अपने को मोम की भाँति जलाकर आलोक फैलाने वाली दीप शिखा में विश्व-कल्याण और ससार-सेवा का जो उदात्त आदर्श दृष्टिगत होता है वह काव्य ही नही, ससार का आदर्श है।"[1] यही समाज-कल्याण की भावना निम्न कविता मे है—

दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचचल,
पथ न भूले एक पग भी।
पथ न खोये लघु विहग भी,
स्निग्ध लौ की तूलिका से, आँक सबकी छाह उज्ज्वल।

—दीपशिखा

महादेवी के इस करुणा-कलित हृदय मे खारे आँसू निकलते है अथवा-मोती ? इसकी पहचान तो रत्न-पारखी कर सकते है, किन्तु महादेवी पानी की सार्थकता' आग के साथ ही मानती है—

आग हो उर में तुभी दृग में सजेगा आज पानी।

—साध्य गीत

वस्तुत महादेवी के उर में 'आग है, ओष्ठो पर उद्बोधन का राग है। यदि ऐसा है तो नयनो मे नीर कैसा ? हिमालय में ज्वाला है पर ऊपर से नीर जैसा—यही इस प्रश्न का समाधान है। हृदयस्थ आग से ही महादेवी निम्न स्फूर्तिप्रद, झँझोडने वाली कविता कर सकी हैं—

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना।
जाग तुझको दूर जाना॥
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प होले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले।
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले।

---

१ विजयेन्द्र स्नातक।

पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ जाना।
बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले।
पथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले,
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन।
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस गीले,
तू न अपनी छांह को अपने लिए कारा बनाना।

—सान्ध्य गीत

ऊपर लिखी कविता में जिस 'विश्व के क्रन्दन' की ओर जागरूक करने का प्रयत्न किया गया है वह 'शृंखला की कड़ियाँ' आदि के क्रन्दन से भिन्न नहीं। कवि और गद्यकार महादेवी की आत्मा एक ही है शरीर ही दो हैं। इन दोनों में इतना ही अन्तर है जितना गद्य और कविता में। गद्य और कविता की प्रकृति को जानकर ही महादेवी ने लिखा है—अपने करुणा-बहुल दर्शन के बौद्धिक निरूपण के लिये गद्य को और भावात्मक निरूपण के लिये पद्य को चुना है।

अन्त में हम इतना ही कहेंगे कि महादेवी कोमल भी हैं, कठोर भी, उनमें आग भी है पानी भी, और वे दीन भी हैं, अभिमानिनी भी—ऐसा विरोधाभास उनके व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है—

नभ में गर्वित झुकता न शीश।
पर अंक लिए है दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश भार।
कितने मृदु कितने कठिन प्राण।

—सान्ध्य गीत

महादेवी की भाव-धारा तथा उस के प्रेरक तत्त्वों का संक्षेप में विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

महादेवी के दु खवाद के प्रेरक प्रभाव—

१. महादेवी पर करुणा के सस्कार प्रारम्भ से थे ।

२. महादेवी पर आध्यात्मिक सस्कार भी थे जिस कारण आत्मा का परमात्मा के प्रति विरह मिलता है ।

३ महादेवी पर बुद्ध के दु खवाद का प्रभाव है, (किन्तु उसके अनात्मवादी, निर्वाण-सिद्धान्त का नही) ।

४ ससार की असारता से उत्पन्न स्वाभाविक दु ख ।

५ व्यक्तिगत विषमताजन्य दु ख, जिसका काव्य में उदात्तीकरण (Sublimation) हो जाता है और वेदना, सवेदना अथवा करुणा का रूप धारण कर लेती है ।

६. युगीन परिवेश, जिसमें रूढिवादी अथवा परम्परागत के स्थान पर बौद्धिक अध्यात्म मिलता है । इस बौद्धिक अध्यात्म का विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है—

क इस युग के सर्वप्रसिद्ध अद्वैतवादी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन के व्यावहारिक रूप मानववाद पर बल दिया । रवीन्द्र और गाधी का अध्यात्म भी समाज से बाहर अन्तर्साधनामूलक नही, वह लोक मगलात्मक मानववादी अध्यात्म है ।

ख. मानव में ईश्वर-दर्शन ही सच्चा ईश्वर-दर्शन तथा मानव प्रेम ही ईश्वर प्रेम है । मानव का मानव से अर्थात् विश्व से बन्धन ही मुक्ति है । महादेवी के ही शब्दो में "विश्व जीवन में अपने जीवन को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार जल बिन्दु सागर में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है ।"

ग इस भूतल को ही स्वर्ग अथवा मुक्ति-लोक बनाने का भी आग्रह ।

घ. आज व्यक्ति को अपने प्रति वीतरागी होकर भी ससार लिये गृही होना है ।

'नीहार' की ८, १५, १७, २४ न० की कविता में देखे जा सकते ह ।

६. मेरे विचार में किसी रचना के स्वरूप की निरख-परख में रचनाकार का उल्लेख उतना ही करना चाहिये जितना आवश्यक हो, कृति से अधिक कर्त्ता का निर्देश हमारे निष्कर्षों को प्रभाववादी तथा आलोचक की तटस्थता को भग कर देता है ।

महादेवी की विचार-धारा

भावधारा और विचारधारा में विभाजक रेखा खीचना कठिन है। गीति काव्य जिसमें साधारण कविता से भी भावाधिक्य होता है, यह और भी असम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त छायावादी कवि आँग्ल-आलोचको की भाँति विपयगत तथा विपयीगत भेद प्राय नही मानते और वौद्धिकता और हार्दिकता अथवा भाव-प्रवणता को एक मानते है। अतएव महादेवी के किंचित् विचारो का परिचय 'भावधारा' में मिल ही चुका है। फिर भी आत्मा-परमात्मा जीवन-जगत् के विविध पक्षो के प्रति उनका दृष्टिकोण समझना आवश्यक हो जाता है।

महादेवी का काव्य आत्मा-परमात्मा के सम्वन्धो की विवेचना करता है। महादेवी निराकार की आराधिका है। उन्होने जिस निराकार के प्रति रागात्मक सम्वन्धो को व्यक्त किया है, उसकी पूजा-अर्चना की किसी वाह्य मन्दिर में क्या आवश्यकता है जव जीवन ही मन्दिर हो—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सूना मदिर मेरा लघुतम जीवन रे।

—नीरजा

आत्मा परमात्मा अभिन्न थे कि परमात्मा को सूनेपन का भान हुआ 'एकोऽहवहुस्याम्'—एक से वहुत होने की इच्छा जागी और मकडी वन उसने अपने अन्तर से वाह्य का निर्माण कर दिया। क्रमश. दोनो उदाहरण लीजिये—

१ हुआ यों सूनेपन का भान
प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण

२. स्वर्ण लूता सी कब सुकुमार
हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरगे तार
बुन लिया अपना ही ससार।

इस मानव जगत् का पाँच भौतिक प्रसार उसीने तो किया है—

नील नभ का असीम विस्तार
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल के निर्झर वीचि-विलास
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास
धरा से ले परमाणु उधार
किया किसने मानव साकार।

इन पक्तियो में पाँच तत्वो-आकाश, अग्नि, पानी, वायु तथा धरा-का क्रमश उल्लेख हुआ है।

किस प्रकार इस जगत् का अग-जग उसीका है तथा उस परम सत्ता के लीलाभाव के सन्तोष के लिये ही इसका सृजन-सहार होता रहता है, यह सब नीरजा की एक ही कविता में उस परम शक्ति के नृत्य-रूपक द्वारा सुन्दर-रूप में व्यक्त हुआ है —

लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर-गर्जन रुन-झुन मजीर,
उडता झझा में अलक-जाल,

मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर;
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।

× × ×

युग हैं पलकों को उन्मीलन
स्पन्दन में अगणित लय जीवन;
तेरी श्वासों का नाच-नाच
उठता बेसुध जग सराचर।

× × ×

जड़ कण-कण के प्याले झलमल,
छलकी जीवन मदिरा छल-छल,
पीती थक झुक-झुक झूम-झूम,
तू घूंट-घूंट फेनिल शीकर।

× × ×

तेरे हित जलते दीप-प्राण
खिलते प्रसून हंसते विहान
श्यामांगिनि ! तेरे कौतुक को
वनता जग मिटमिट सुन्दर तर
प्रिय-प्रेयसी ! तेरा लास अमर !

अथवा

सिन्धु को क्या परिचय दें देव
विगडते बनते वीचि-विलास
क्षुद्र हैं मेरे बुद-बुद-प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्ही में नाश।

वस्तुत सर्वत्र उस आधार का ही प्रतिविम्व है, फिर आत्मा परमात्मा और प्रकृति में विभिन्नता तथा सौदावाजी कैसी ?

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पदन;
यह रज क्या ? नव मेरा मृदुतन,
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण;
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन;
मेरे सब सब में प्रिय तुम
किससे व्यापार करूँगी मैं ?
आंसू का मोल न लूंगी मैं ?

—नीरजा

इस प्रकार महादेवी सर्वात्मवादी-अद्वैतवादी है। वैसे तो जीव ब्रह्म अभिन्न है, अद्वैत है—

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम;
मधुर राग तू मैं स्वर सगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्य मय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

—नीरजा

किन्तु

अपने दो आकार बनाने
दोनों का अभिसार दिखाने
भूलों का ससार बसाने

—नीरजा

के लिये उस निरुपम किन्तु निर्मम प्रियतम ने मायारूपी झिलमिल दर्पण दे डाला है। जब तक माया का यह दर्पण बना है, जीव में अपनेपन अथवा अहकार जन्य द्वैत भाव है, प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय तथा रीझने-रूठने का क्रम चलतारहेगा। किन्तु इसके टूटने पर घूँघट पट के खुलने पर कौन प्रेयसी और कौन प्रियतम ? कौन साधक और

कौन साध्य ?

आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुंठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना दुख प्रियतम।
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

—नीरजा

तात्पर्य यह कि माया के दर्पण के टूट जाने पर आत्मा-परमात्मा मिलकर एक हो जाते हैं।

जीव का ससार में जन्म ही 'प्रियतम' के वियोग का परिचायक है—आत्मा का परमात्मा से अलग होना ही जीव का जन्म है। 'रश्मि' की इन पक्तियो में यही तथ्य व्यक्त हुआ है—

जन्म ही जिसका हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली साँस

नीरजा की इन पक्तियों का भी यही रहस्य है—

विरह का जल जात जीवन, विरह का जल जात।

वह प्रियतम भी कितना निष्ठुर है, जिसने स्वय अपने हृदय म अभाव की भावना जागृत होने से, धूलि की प्रतिमा में वेदना के प्राणो का सचार किया और अब जानकर अनजान बनकर इन्ही जीवो से परिचय पूछने लगा। कैसी निर्मम विस्मृति है—

काल-सीमा-हीन सूने में रहस्यनिधान,
मूर्तिमान कर वेदना तुमने गढे जो प्राण,

धूलि क कण मे उन्हें बन्दी बना अभिराम
पूछते हा अब अपरिचित से उन्हींका नाम।

अथवा

किसी नक्षत्र लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात
ढुलक जो पड़ी ओस की बूंद
तरल मोती सा ले मृदुगात
कहो क्या परिचय दे नादान।

किसी निर्मम कर का आघात,
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पखों के साथ,
दूर जो उड जाती झंकार।
जन्म ही उसे विरह की रात
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात

—रश्मि

विश्व के कण-कण की यही करुण-निष्ठुर कहानी है—

क्या नई मेरी कहानी !
विश्व का कण-कण सुनाता
प्रिय वही गाथा पुरानी !
सजल बादल का हृदय-कण,
चू पडा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित
तृषित दरका पक का उर;
मिट गई उससे तड़ित् सी,
हाय वारिद की निशानी !

करुण यह मेरी कहानी !
जन्म से यह मृदुकज—उर में —
नित्य पाकर प्यार लालन;
अनिल के चल पख पर फिर
उड़ गया जब गध उन्मन;
बन गया तब सर अपरिचित
हो गई कलिका बिरानी !
निठुर यह मेरी कहानी !

—नीरजा

इसीलिए जीव परमात्मा के मिलने के लिये आकुल-व्याकुल है और युग-युग से—जब से वह परमात्मा से अलग हुआ है तब से—नीर बहा रहा है —

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर !
× × ×
युग युग से बहता है अधीर !

—नीरजा

लौकिक विषाद न होने से यह विरह भी मधुर है, 'मधुर पीर' है। इसलिये जीव के लिये 'चरम सत्य' उस प्रियतम की 'सुधि का दर्शन' है। क्योंकि इसके द्वारा प्रियतम की प्राप्ति सम्भव है। जिससे पृथक होने से जीव विरह-व्याकुल है उसीको प्राप्त करने पर यह विरह शान्त भी हो सकती है—

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज;
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जल जात !

—नीरजा

‡(नीरजा ३५)

जीव के स्वरूप के सम्बन्ध में महादेवी रश्मि की भूमिका में इस प्रकार लिखती है—'मनुष्य में जड और चेतन दोनो एक प्रगाढ आलिगन में आवद्ध रहते है। उसका बाह्यकार पार्थिव और सीमित ससार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का—एक उसको विश्व में बांध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उडाता ही रहना चाहता है।

जड-चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड के विना आकार शून्य। इन दोनो की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है''—इसी तथ्य को निम्न पक्तियो में देखिये—

चेतना से जड का वन्धन
यही सस्कृति की हृत्कम्पन

—रश्मि

अथवा

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पद चिन्ह जीवन में,
शाप हूँ जो वन गया वरदान वन्धन में;
कूल भी हूँ कूल हीन प्रवाहिनी भी हूँ!

—नीरजा

अथवा

प्रिय मैं हूँ एक पहेली भी।
जितना मधु जितना मधुर हास
जितना मद तेरी चितवन में,
जितना क्रदन जितना विषाद,
जितना विष जग के स्पन्दन में

पी पी में चिर दुख प्यास बनी,
सुख सरिता की रग रेली भी।
मेरे प्रति रोमों से अविरल
झरते हैं निर्झर और आग
करती विरक्ति आसक्ति प्यार
मेरे श्वासों में जाग जाग
प्रिय मैं सीमा की गोद पली
परहूँ असीम से ेली भी !

परमात्मा के साथ मानव का भी अपना महत्त्व है। आखिर इस की सुधि द्वारा ही तो परमात्मा का महत्त्व है। 'नीरजा' से कुछ उदाहरण लीजिये —

तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !
कम्पित कम्पित,
पुलकित पुलकित,
परछाईं मेरी से चित्रित,
रहने दो रज का मञ्जु मुकुर,
इस बिना शृंगार—सदन सूना !
मेरी सुध बिन क्षण क्षण सूना !

—नीरजा

यहाँ 'रज' के 'मंजु मुकुर' से तात्पर्य मानव शरीर से है। यही तथ्य इन पक्तियों में द्रष्टव्य है —

चिन्ता क्या है, हे निर्मम
बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अन्धेरा।

—नीहार

मै वह सौरभ हूँ जो उड़कर
कलिका में लौट नहीं पाता,
पर कलिका के नाते ही प्रिय जिसको जग ने सौरभ जाना।

—नीरजा

महादेवी पर बौद्धमत का सीमित मात्रा में प्रभाव है। बौद्धो के समान उन्होंने जगत को दुःखमय स्वीकार किया है—

१—जीवन जलकण से निर्मित सा

× × ×

सजल मेघ सा धूमिल है जग
२—बाहर घन सम, भीतर दुःख तम

—नीरजा

'करुणा' को भी महत्त्व दिया है। वे गौतम बुद्ध की करुणा द्वारा अज्ञानी जग को इस प्रकार जगाती हैं —

जाग बेसुध जाग !
अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक हार,
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रति द्वार।
फूल जिसने शूल छू चन्दन किया सताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप।
करुणा के दुलारे जाग।

इसलिये इन्होंने ब्रह्म को भी करुणा के रुप में पाने की आकाक्षा प्रकट की है—

तुम को पीडा में ढूंढा तुममें ढूंढूंगी पीडा !

—निहार

तुम मानस में बस जाओ,
छिप दुख की अवगुण्ठन से।

—रश्मि

मैं तुम्हें खोजने के मिस,
परिचित हो लूँ कण कण से।

—रश्मि

तुम दुख बन इस पथ से आना,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना !

—नीरजा

मैं करुणा की वाहक अभिनव।

—दीपशिखा

यही कारण है कि महादेवी की काव्य-भूमि कल्याणी करुणा से सिंचित है। इसी करुणा से वह विश्व से एक रूप होना चाहती हैं और जगत के विषाद को करुणा-धारा से धोना चाहती हैं —

तुम्हें बांध पाती सपने में।
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती इस छोटे क्षण अपने में।
पावस घन सी उमड़ बिखरती,
शरद निशा-सी नीरव घिरती।
धो लेती जग का विषाद इस ढुलते लघु आँसू कण अपने में !

—नीरजा

इस प्रकार ब्रह्म से मिलना और जगत के साथ एकरूप होना एक ही बात है। इसलिये महादेवी ने परमात्मा से प्रार्थना की है कि वह कहीं उनकी जीवन-वीणा को सुख से झंकृत न करदे क्योंकि ऐसी स्थिति में संसृति के साथ एकरूपता संभव न हो सकेगी —

कुहरा जैसे घन आतप में,
यह संसृति मुझ मे लय होगी।
अपने मधु रागों से,
यह लघुवीणा न जग जाना।
तुम दुख बन इस पथ से आना ! —नीरजा।

इस करुणा ने मानववादी भावनाओ को प्रश्रय दिया है—

जिनसे कहती बीती बहार,
मतवाले जीवन है असार।
जिन झंकारो के मधुर गान,
ले गया छीन कोई अजान।
उन तारो पर बन कर विहाग,
मँडरा लेने दो हे उदार!
फिर एक बार, बस एक बार।

—नीहार

मेरे लघु आँसुओ—क्षुद्र करुणा—का भला उस त्यागी-मानववादी वारिद (बादल) के आगे क्या अस्तित्त्व जो—

लक्ष्य हीन सा जीवन पाते,
घुल औरो की प्यास बुझाते।
अणुमय हो जगमय हो जाते,

—रश्मि

'अणुमय हो जगमय हो जाते' पक्ति अत्यन्त सार्थक है। पर-सेवा की साधना में मनुष्य का चरम लक्ष्य यही है कि स्वय त्याग कर आत्म प्रसार करना, इतना कि अह का इद में पर्यवसान हो जाय इसलिए महादेवी निम्न व्यक्ति का ही स्वागत कर सकती है—

जो उजियाला देता हो।
जल जल अपनी ज्वाला में,
अपना सुख बाँट दिया हो।
जिसने इस मधुशाला में,
हँस हलाहल ढाला हो।
• अपनी मधुसी हालामें,

मेरी सांसों से निर्मित।
उन अधरों का प्याला हो।

—नीरजा

महादेवी ने बौद्धो की करुणा को तो अवश्य महत्व दिया है, किन्तु वे उनके समान अनात्मवादी नही और वे जन्मान्तरवाद में विश्वास रखती हैं। उनकी ये कामनाएँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं—

वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आंख-मिचौनी यह अपनी।
जीवन में खोज तुम्हारी है,
मिटना ही तुमको छू पाना।

—नीरजा

उन्हें नित्य घनवत घिरना-घुलना ही अच्छा लगता है, इसलिए यही वरदान मांगा है—

नित घिरूँ झर झर मिटूँ प्रिय,
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय।

इन्हें निर्वाण अथवा मुक्ति की अपेक्षा नही अपितु जीवन के शत बन्धनों से अनुरक्ति है—

तप सा नीरव नभ से विस्तृत,
हास-रुदन से दूर अपरिचित।
वह सूनापन हो उनका,
यह सुख-दुखमय स्पदन मेरे हों।
झरते नित लोचन मेरे हों।
जिसमें कसक न सुधि का दंशन।
प्रिय में मिट जाने के साधन,
ये निर्वाण-मुक्ति उनके

'तजता पल्लव वृन्त पतन के,
हेतु नए विकसाने को।
मिटता लघु पल, प्रिय देखो,
कितने युग कल्प मिटाने को।

—नीरजा

महादेवी मृत्यु के इसी रहस्य को जान-पहचान कर, तथा निर्भय होकर विश्वास से कह सकती है—

प्रिय चिरन्तन है सजनि,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं!

श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिरधन।
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन॥

छिप कहाँ उसमें सकी।
बुझ-बुझ जली चल दामिनी मैं॥

—साध्य गीत

उपर्युक्त उदाहरणों में मृत्यु विश्राम-स्थली, विकास का क्रम तथा 'क्षण-क्षण नवीनता' के रूप में वर्णित हुई है। इसके अतिरिक्त मृत्यु के स्वोत्कृष्ट स्वरूप आत्मोत्सर्ग को भी महत्व प्रदान किया है। मिटने वालो की बेसुध रंगरलिया ही विश्व को सुरभित-आलोकित कर सकती है—

हंस देता नव इन्द्र धनुष की—
स्मित में घन मिटता-मिटता।
रंग जाता है विश्व राग से,
निष्फल दिन ढलता ढलता॥
कर जाता संसार सुरभिमय,
एक सुमन झरता झरता।

भर जाता आलोक तिमिर में,
लघु दीपक बुझता-बुझता ।।

—नीरजा

इसीलिए महादेवी को घन और दीपक के उपमान अति प्रिय हैं। एक जलकर और दूसरा घुलकर आत्मोत्सर्ग करके जगत् को हरीतिमा और प्रकाश प्रदान करते हैं। साधना ही जीवन और जीवन ही साधना है। साधना की आराधना से वह स्वयं आराध्यमय हो उठी है।

मैं सजग चिर साधना ले,
सजग प्रहरी से निरन्तर।
जागते अलि रोम निर्भर,
निमिष के बुद बुद मिटाकर।
एक रस है समय सागर,
हो गई-आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले।

अतएव चिर अतृप्ति में उन्हें तृप्ति मिलना स्वाभाविक है—

तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं,
पग विरह पथिक का धीमा।
आते-जाते मिट जाऊँ,
पाऊँ न पथ की सीमा।।

—रश्मि

यह चिर अतृप्ति की भावना निम्न पंक्तियों में भी स्पष्ट है।

पाने में तुमको खोऊँ,
खोने में समझूँ पाना।
यह चिर अतृप्त हो जीवन,
चिर तृष्णा हो मिट जाना।

—रश्मि

मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर-रहूँ ।

—साध्य गीत

जलना ही रहस्य है बुझना है नैसर्गिक बात।

—रश्मि

जलना ही प्रकाश, उसमें सुख ।
बुझना ही तम है, तम है दुख ॥

—नीरजा

क्यों जग कहता मतवाली ?
क्यो न शलभ पर लुट-लुट जाऊँ ।
झुलसे पखों को चुन लाऊँ,
उन पर दीप शिखा अंकवाऊँ ।
अलि ! मैंने जलने ही में जब,
जीवन की निधिपाली ।

—नीरजा

रश्मि की एक कविता केवल इसी अतृप्ति के दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए ही लिखी गई है । कवयित्री समझती है—

चिर तृप्ति कल्पनाओं का,
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी ।
पल में विरक्ति जाती बन ॥
पूर्णता यही भरने की,
ढुल, कर देना सूने घन,
सुख की चिर पूर्ति यही है ।
उस लघु से फिर जावें मन ॥
चिर ध्येय यही जलने का,
ठंडी विभूति बन जाना,

है पीड़ा की सीमा यह,
दुख का चिर सुख हो जाना ॥

अन्त मे साधना-निष्ठा की यह अमर पंक्तियाँ आस्वादनीय है जो महादेवी के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है—

युग ुगान्तर की पथिक में छू कभी लूँ छांह तेरी।
ले फिरू सुधि दीप-सी, फिर राह में अपनी अँधेरी ॥

लौटता लघु पल न देखा,
नित नये क्षण रूप रेखा।
चिर बटोही मैं मुझे,
चिर पंगुता का दान कैसा।
देव अब वरदान कैसा !

इस साधना-मार्ग पर चलना शूलो के पथ पर चलना है। भला—

क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।

इसलिए महादेवी ने साधना-मार्ग की कठिनाइयो का वर्णन कर साधक को सजग कर दिया है। 'नीहार' की निम्न कविता अत्यन्त सरल-सरस है—

कामना की पलकों में झूल,
नवल फूलो के छूकर अंग।
लिए मतवाला सौरभ साथ,
लजीली लतिकायें भर अंक ॥
यहा मत आओ मत्त समीर,
सोरहा है मेरा एकान्त।
लालसा की मदिरा में चूर,
क्षणिक भंगुर यौवन पर भूल।

साथ लेकर भौंरों की भीर,
खिलासी हे उपवन के फूल।
बनाओ इसे न लीलाभूमि,
तपोवन है मेरा एकान्त॥

अपने पथ से विचलित करने के लिये जग क्या-क्या प्रलोभन देता तथा भय दिखाता है, इसका वर्णन नीरजा की ४४ कविता में दर्शनीय है। कुछ पक्तियाँ लीजिये—

कह । जग दुख को प्यार न कर।
अनबींधे मोती वह दृग के,
बंध पाये बन्धन में किसके ?
पल पल बनते पल-पल मिटते,
तू निष्फल गुथ-गुथ हार न कर॥

\+ + +

सुख मधु में क्या दुख का मिश्रण।
दुख विष में क्या सुख-मिश्रीकण॥
जाना कलियों के देश तुझे,
तू शूलों से शृगार न कर।
कहता जग दुख को प्यार कर॥

महादेवी ने साधना-पथ की कठिनाइयो की ओर सजग-सचेत ही नहीं किया वरन उत्साह-अनुप्रेरणा भी दी है—

आई दुख की रात मोतियों की देने जयमाल,
सुख की मन्द बातास खोलतीं पलकें दे-दे ताल;
डर मत रे सुकुमार !
तुझे दुलराने आये शूल।
अरे तू जीवन-पाटल फूल॥ —नीरजा

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं ।
हीरक सी वह याद,
बनेगा जीवन सोना ।
जल-जल तप-तप किंतु,
खरा इसको है होना ।
चल ज्वाला के देश जहां अंगारे ही हैं ।

—सांध्य गीत

महादेवी ने सच्चे साधक के लक्षण इस प्रकार बताए हैं—

प्रिय जिसने दुख पाला हो ।
जिन प्राणों से लिपटी हो,
पीडा सुरभित चन्दन सी ।
तूफानों की छाया हो,
जिसको प्रिय आलिंगन सी ।
वरदो यह मेरा आंसू,
उसके उर की माला हो ।
जो उजियाला देता हो,
जल-जल अपनी ज्वाला में ।
अपना सुख बांट दिया हो,
जिसने इस मधुशाला में ।
हंस हलाहल ढाला हो,
अपनी मधु-सी हाला में ।
मेरी सांसों से निर्मित,
उन अधरों का प्याला हो ।

—नीरजा

सांध्य गीत में यही लक्षण हिमालय पर लिखी कविता 'हे चिर महान' में बताए हैं—

टूटी है कब तेरी समाधि,
झञ्झा लौटे शत हार हार।
बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुन कर जलते कण की पुकार।
सुख से विरक्त दुख में समान॥

नीरजा की आठवी कविता मे महादेवी ने साधक के लिए यह आवश्यक माना है कि वह दूसरो की साधना से नही वरन अपने भीतर की साधना-ज्वाला से ही आलोक-प्रसार कर सकता है। इस सबध मे शलभ का दृष्टान्त दिया है—

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल,
झुलस कहाँ हो पाया उज्ज्वल।
कब कर पाया वह लघु तन से।
नव आलोक-प्रसार,
ओ पागल ससार।
अपना जीवन-दीप मृदुलतर,
वर्ती कर निज स्नेह सिक्त उर।
फिर जो जल पाये हँस-हँस कर॥
हो आभा साकार,
ओ पागल ससार।

इस जीवन-वाटिका में कभी पतझर का प्रसार होता है तो कभी वसन्त का विस्तार। 'उर की डाली' में कभी सुख के तरुण फूल है तो कभी दुख के करुण-शूल। जब व्यक्ति का जीवन इस उषा-साझ के जग में व्यतीत होता है तो सुख-दु ख को सहज रूप में क्यो न लिया जाय। जब मानव चेतना का प्रवाह 'दु ख से अविल और सुख से पकिल' (नीरजा १) हो तो दोनो का स्वागत श्रेयस्कर है। अतएव सुख-दु ख में

से किसी एक का अभाव होने पर विश्व का आँगन सूना दिखाई देने लगता है—

इन मिलन विरह शिशुओं के बिन,
जग का विस्तृत आँगन सूना।

—नीरजा

इस दुःख-सुख की भावना का नीहार से दीपशिखा तक निरन्तर विकास-परिष्कार हुआ है। नीहार में वेदना ही अधिक है। 'रश्मि' की भूमिका में महादेवी लिखती है—"मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पडा रहेगा।

परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है, जिस प्रकार जीवन के उषा काल मे मेरे सुखो का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड पडी है, इसी प्रकार सान्ध्य काल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार मे दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पडेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।"

यही तथ्य 'रश्मि' की इन पक्तियो में व्यक्त हुआ है—

सोते जो असख्य बुदबुद से,
बेसुध सुख मेरे सुकुमार।
फूट पड गे दुख सागर की,
सिहरी धीमी स्पन्दन में॥
मूक हुआ जो शिशिर निशा में,
मेरे जीवन का सगीत।
मधु-प्रभात में भर देगा वह,
अन्तहीन लय कण-कण में॥

यही नहीं 'रश्मि' में ही महादेवी ने सुख-दुःख की अनिवार्यता को हृदयगम कर लिया है—

क्यों इन तारों को उलझाते ?
अनजाने ही प्राणों में क्यों,
आ आ कर फिर जाते ?
लय में मेरा चिर करुणाल्घन,
कम्पन में सपनों का स्पन्दन।
गीतों में भर चिर सुख चिर दुख,
कण कण में बिखराते !
मेरे शैशव के मधु में घुल,
मेरे आँसू स्मित में हिलमिल।
मेरे क्यों न कहाते ?

और वह दुःख-सुख के सामञ्जस्य की समर्थक हैं। 'नीरजा' ही में नही, जैसा कि कुछ आलोचको का मत है, 'रश्मि' में भी यही कामना है—

चिर मिलन-विरह पुलिनों की,
सरिता हो मेरा जीवन।
प्रतिपल होता रहता हो,
युग कूलों का आलिंगन।
अथवा
गूँथे विषाद के मोती,
चाँदी सी स्मित के डोरे।
हो मेरे लक्ष्य-क्षितिज की,
आलोक तिमिर दो छोरें॥

पर रश्मि की जिस कविता में उक्त पंक्तियां हैं उसी में दुख को

इस प्रकार महत्व दिया है कि वे ब्रह्म को भी दु ख रूप म पाना चाहती हैं—

'तुम मानस मे वस जाओ,
छिप दु ख की अवगुण्ठन से ।'

ताकि वे विश्व के साथ तादात्म्य कर सकें—

मै तुम्हें ढू ँढने के मिस,
परिचित हो लू ँ कण-कण से ।

इस प्रकार दार्शनिक स्तर पर वे दु ख को अधिक महत्त्व प्रदान करती हैं । रश्मि की पांचवी कविता में केवल दु ख के ससार के साथ आत्मीयता-एकात्मकता स्थापित करने वाले रूप पर ही प्रकाश डाला गया है—

रजत रश्मियो की छाया में धूमिल घन सा वह जाता
इस निदाघ से मानस में करुणा के श्रोत वहा जाता ॥
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का ।
एक सूत्र सब के वन्धन का ॥
स्मृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता ।
वह उर में आता वन पाहुन,
कहता मन से अव न कृपण वन ।
मानस की निधियां लेना गिन,
दग-द्वारो को खोल विश्व भिक्षुक पर हंस वरसा जाता ।

\+ + + +

मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर ।
रुद्ध हृदय के पट लेता कर ॥

गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझ से क्या पतझर का नाता'।

दुख के पद छू बहते झरझर,
कण-कण से आँसू के निर्झर।
हो उठता जीवन मृदु उर्वर॥
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता॥

इस प्रकार सुख जहा यह कहता है कि मैं वसन्त हूँ और मेरा पतझर से कोई नाता नही—सुखी व्यक्ति सुख को अकेले ही भोगना चाहता है—वहाँ दु ख सब को एक सूत्र में बाधकर ससीम व्यक्ति का असीम जग के साथ तादात्म्य करा देता है और यही धरा पर 'मुक्ति' है।

दार्शनिक स्तर पर दु ख को महत्त्व देते हुए—और यही महादेवी का दु खवाद है—वह सामान्य स्तर पर दु ख-सुख के समन्वय की ही आकाक्षा रखती है —

यह पतझर मधुवन भी हो।
दुख सा तुषार सोता हो,
बेसुध-सा जब उपवन में।
उस पर छलका देती हो,
वन श्री मधुभर चितवन में।
शूलो का दंशन भी हो,
कलियों का चुम्बन भी हो।

—नीरजा

उक्त कविता के समान नीरजा की अनेक कविताओ में ऐसा हुआ है। यथा निम्न पक्तियो में यह भावना कितनी प्रबल है —

१—एक घडी गालूँ प्रिय मैं भी।
मधुर वेदना से भर अन्तर।
दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय।
उपल बने पुलकित से निर्झर।

२—यह सूनापन हो उनका,
यह सुखदुखमय स्पन्दन मेरे हो।
झरते नित लोचन मेरे हो॥

३—मूक सुख-दुख का रहे।
मेरा नया शृंगार सा क्या?

४—सुख दुख से भर आया लघु उर।
मोती से उजले जल कण से,
छाये मेरे विस्मित लोचन।
लाये कौन संदेश नया घ॥

५—खेल सुख-दुख से चपल थक,
सो गया जग-शिशु अचानक।

६—जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर!
दोनों मिलकर देते रजकण,
चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर।
जग पतझर का नीरवरसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल।
मैं पिक बन गाती डाल डाल।
सुन फूट फूट उठते पल पल,
सुख-दुख-मंजरियों के अंकर।

७—दुख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार।
सुख में सोई री प्रिय-सुधि की अस्फुट सी झंकार।
हो गये सुख दुख एक समान।

८—हंसने में छू जाते तुम,
रोने में वह सुधि आती।
मैं क्यों न जगा अणु-अणु को,
हंसना रोना सिखलाऊं।

नीरजा से साध्यगीत और साध्य गीत से दीपशिखा में यह प्रवृत्ति बढ़ती ही गई है । सुख-दु ख को इस प्रकार सहज रूप में ग्रहण करने से जीवन मे सतुलन जन्य आनन्द ही नही मिलता, मनुष्य निर्भय होकर कर्म-पथ पर तत्पर रहता है—ऐसी अवस्था में निर्जन गह्वरो में पलायन नही कर सकता—

जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजें नित निर्जन गह्वर।
प्रिय के सदेशो के वाहक,
मैं सुख दुख भेटूँगी भुजभर।

—साध्य गीत

इस प्रकार महादेवी को सुख-दु ख प्रिय के सदेशो के वाहक जान पडते हैं। साधक अपने साध्य की साधना में ऐसा सज्जित-मजित होता है कि दु ख-सुख उसको प्रिय का प्यार-उपहार जना पडते है—'मधुर प्रिय' की भावना से वे मधुर हो उठते है—

दु ख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी और न सीखा ।
मधुर मुझको हो गए सब मधु र प्रिय की भावना ले ।

—सांध्य गीत

और यही बात 'नीरजा' मे है—

तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला।
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूँ क्यो मेरे साकी।
देते हो मधु मय विषमय क्या ?

महादेवी और मीरा

प्रथम इस विषय पर कुछ विद्वानों की सम्मतियां दी जाती हैं—

महादेवी जी के काव्य का आधार उसी अर्थ में काल्पनिक कहा जा सकता है जिस अर्थ में कबीर और मीरा का काव्याधार काल्पनिक कहा जा सकता है, जिस अर्थ में गीताजलि और आँसू काल्पनिक हैं।

मीरा और महादेवी के काव्य का आधार बहुत अंशो में एक सा है, किन्तु ये दोनो दो युगो की सृष्टियाँ हैं। अपने अपने युगो के अनुरूप ही इन दोनो का काव्य व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोद्रेक का नमूना है। वह अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्‌गार है। उसमें काव्य कला की बारीकियाँ हमें नही मिलती, मूर्तिमान विरह की तड़प और मिलन के स्पन्दन सुन पड़ते है। प्रकृति और कल्पना की सहायता से भावो का चित्रण वे नही करने बैठी मध्य-युग के सभी समुन्नत कवियो की यह अप्रतिम नैसर्गिकता उनकी अपनी चीज है। उस तरह की चीज आज इस बौद्धिक विकास के युग में ढूँढना दोनो युगो का अपमान करना है। महादेवी जी में भी अनुभूति की सच्चाई और गहराई है, किन्तु वह काव्यकला में सज कर आई है। मीरा अपने प्रियतम की खोज में राजमहल छोड़कर निकल आई थी और उन्हे गृह वन पुकारती फिरती थी। उनकी काव्य पुकार साकार है। महादेवी जी की ध्वनि अधिक धीमी और अधिक सभ्य होनी समुचित ही है।

विशुद्ध काव्य दृष्टि से महादेवी मीरा की ऊँचाई पर कम पहुँचती

है। काव्य-कला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र नैसर्गिक उन्मेष नही। साथ ही उसमें एकागिता भी है ।

मीरा का काव्य दिव्य प्रेम और विरह पर आश्रित है जो एक ओर उसे सहज हृदयग्राही वनाता है और दूसरी ओर काव्य के विषय को विस्तीर्ण कर देता है। महादेवी के काव्य मे वैराग्य भावना का प्राधान्य है. ।—नददुलारे वाजपेयी

उनकी (महादेवी की) कविता में आत्म निवेदन है किन्तु मीरावाई जैसी निरपेक्ष तन्मय आत्मविस्मृति नही, असीम की खोज और हल्का स्पर्शानुभव है, चिन्तन है, किन्तु रहस्यवादियो का अटपटा, अनगढ तेजस्वी, दार्शनिक असन्तोष नही। मीरावाई की व्याकुलता इतनी व्यक्तिगत है कि कला की निर्वैयक्तिक कसौटी पर खरी नही उतरती।

—अज्ञेय

एक दृष्टि से मीरा को महादेवी जी की समकक्षता में रखना अधिक सगत नही प्रतीत होता क्योकि मीरा भक्त है और महादेवी रहस्यवादिनी। फिर भी कुछ ऐसा है कि जव कभी महादेवी का नाम जिह्वा पर आता है तव मीरा का स्मरण स्वत हो आता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि स्त्री कवियो में आज तक जो ख्याति मीरा को मिली वह किसी को नही, अत महादेवी जी ने इस युग की जव उनसे भी वडी ख्याति की स्थापना की तव यह स्वाभाविक लगा कि मीरा और महादेवी जी को एक दूसरे के सामने खडा करके देखा जाय।

—विश्वभर मानव

"महादेवी को मीरा की परम्परा में वतलाना भी इसी प्रकार कलाकार महादेवी को हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो में "युगो पीछे फेंक देना है।" मीरा की भक्ति साधना-मूलक थी। महादेवी की काव्य

साधना कला मूलक है। उनका तथाकथित सूक्ष्म प्रिय क्या मीरा के जोगी का पर्याय हो सकता है ?" विनय मोहन शर्मा

महादेवी जी की पीड़ा चाह कर अपनाई हुई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने में बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल है। वे प्यासी है इसलिए उनमें पानी की पुकार है। महादेवी प्यास को ही चाहती मालूम होती हैं, इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होने जाना नही। घायल घाव नही चाहता। जो अभी घाव ही चाहता हो, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नही। महादेवी जी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढती है। इसका अर्थ है विकलता उतनी अनुभव नही करती। मीरा तो अपने गिरधर गोपाल के पीछे सारी लाज छुडा बैठी है। महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता उतनी नगण्य वस्तु नही है। कोई गिरधारी उनके लिए इतना मूर्त और वास्तव नही बन सकता जो उन्हे उधर से असावधान कर दे। यानी अपने इष्ट को वह विचार रूप में ही ग्रहण कर सकती है, प्रत्यक्ष रूप में नही चाह सकती। प्रत्यक्ष होकर उसमे शरीर तक मिलने की दुस्सम्भावना हो आती। महिला जनोचित उनके स्वभाव के के लिए वह सर्वथा असह्य है। इस तरह मीरा और महादेवी की पीडा में मैं किसी प्रकार की समकक्षता नही देख पाता हूँ।"

—जैनेन्द्र

"असल में ऐसी (महादेवी और मीरा जैसी) तुलनाओ के मूल में सबसे बडी भूल यह है कि दो कवयित्रियाँ या साहित्यकार बहुत अलग-अलग देशकाल-परिस्थितियो के परिपार्श्व में पनपे है। उनमें समता-विषमता खोजना ही व्यर्थ है, क्योंकि बहुत-सी बातें तो उनके युग के प्रभावरूप में रहती है। मीरा आज पुन जीवित होती तो व महादेवी ही बनती या और कुछ यह कहना उतना ही कठिन है जितना

प्रिय इन नयनो का अश्रुनीर
युग युग से बहता है अधीर

—नीरजा

और अधिक समानता के लिए, दोनो की उपासना माधुर्य भाव की है। एक यदि अपने 'गिरधर गोपाल' अथवा 'साँचो प्रीतम' की दासी है [१] तो दूसरी अपने अलबेले सुन्दर प्रिय की मतवाली प्रिया। [२]

दोनो ने ही, मीरा ने अपने साकार 'साचो प्रिय' का तथा महादेवी ने अपने निराकार होते हुए भी 'अलबेले प्रीतम' की सौंदर्य्य सुषमा का वर्णन किया है। यथा महादेवी के अनुसार सृष्टि का सौंदर्य उस 'चिर सुन्दर' की छाया मात्र है। रवि की कनक रश्मियो की उज्जवलता एव शीशि की रजत ज्योत्स्ना की शुभ्रता उसकी आभा के एक कण की भी समता-तुलना नही कर सकती। उनके चरणो की नख ज्योति ने हीरक जालो को लजा दिया है और नक्षत्रो का आलोक भी इनके सामने मन्द पड जाता है।

शृगार, विना प्रेम के कोरा हास-विलास अथवा कामुकता-लोलुपता है। इसलिए चाहे तीव्रता की दृष्टि से परकीया प्रेम अधिक प्रभावपूर्ण हो किन्तु स्वकीया प्रेम ही सच्चा प्रेम माना जा सकता है। उसी में ही वास्तविक परिष्कृति सम्भव है। मीरा और महादेवी दोनो का प्रेम स्वकीया का प्रेम है—शुभ्र-सात्विक है। दोनो ने अलौकिक प्रियतम के प्रति लौकिक भावनाओ से जो आत्मनिवेदन किया है उसमें नारी हृदय का पूर्ण स्पन्दन है।

दोनो की प्रणय भावनाओ में प्रकृति सहायक सिद्ध हुई है और इसीलिए प्रकृति पर प्रेम-भावनाओ का आरोप भी हुआ है। यदि सावन में मीरा का मन उमडता है तो महादेवी के लिए भी घन ऐसा

१— गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम। मीरा
२— मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।
—नीरजा

सन्देश लाते है कि हृदय में 'पुलकों का सावन' उमड़ने लगता है। यदि मीरा कहती है—

"उमग्यो इन्द्र चहुँ दिसि बरसै
दामिण छोडी लाज।
धरती रूप नवा-नवा धरिया,
इन्द्र मिलण के काज।

तो महादेवी में भी कुछ इसी प्रकार व्यक्त हुआ है—

"झूम गर्वित स्वर्ग देता,
नत धरा को प्यार सा क्या।
आज पुलकित सृष्टि क्या,
करने चली अभिसार लय में ?"

—नीरजा

स्थूल रूप मे देखा जाय तो दोनो के काव्य में ऐसी कुछ पंक्तियाँ भी मिल जायेंगी जो समान-सी प्रतीत होती हैं—

तुम बिन हम बिच अन्तर नाँही,
जैसे सूरज घाम। —मीरा

मै तुम से हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश।

—महादेवी

सखी मेरी नींद नसानी हो
पिय को पथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।

—मीरा

पथ देख बिता दी रैन मै प्रिय पहचानी नहीं।

—महादेवी

पतियाँ मै कैसे लिखूँ लिखियो न जाय,
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है झर लाय"

—मीरा

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती
दृग जल की सित मसि है अक्षय,
मसि प्याली भरते तारक द्वय,
पल-पल के उड़ते पृष्ठो पर,
सुधि से लिख साँसों के अक्षर,
मैं अपने ही बेसुध-पन में,
लिखती हूँ कुछ-कुछ लिख जाती।

—नीरजा

दोनो के काव्य में एक प्रकार की एकरसता भी मिलती है।

प्रो० रघुवीरसिंह ने दोनो की काव्यगत मूल प्रेरणा में भी समानता देखी है—"जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनो एक-दूसरे से अभिन्न हैं, लेकिन दो भिन्न युगो की विभिन्न परिस्थितियो में रहने के कारण दोनो का कवि व्यक्तित्व अलग-अलग है।" मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनो पर बचपन में भगवान के भावमय भजन का प्रभाव पडा है। महादेवी का कथन है, 'एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव सस्कारो के बोझ से जडी भूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने-अपने सस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बंधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्व भूमि पर मा से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदो के सगीत पर मुग्ध होकर मैंने व्रजभाषा में पद-रचना आरम्भ की थी। मीरा के विषय मे तो यह जनश्रुति प्रसिद्ध ही

है कि वह वचपन में ठाकुर जी के विग्रह पर अपना तन मन वार चुकी थी और साधुओ के समाज में सम्मिलित होकर भगवान के भजन में उसने तल्लीनता का अनुभव किया था। स्वय मीरा के पद इस वात के साक्षी हैं।"

वस्तुत महादेवी की उपयुक्त उक्ति के आधार पर उनकी काव्य गत मूल प्रेरणा को मीरा से अभिन्न वताना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। कविता में तो आध्यात्मिकता का प्रसार स्वीकार भी किया जा सकता है किंतु उन के सस्मरणमें और गद्यात्मक रचनाओ के विपय में क्या कहा जायगा जिसमें पीडित-शोपित तथा अपमानित नारियो की मूक व्यथा को लौह लेखनी ने मुखरित किया गया है। उनके गद्य को भी इस काव्यगत मूल प्रेरणा से वाहर नहीं किया जा सकता। वस्तुत महादेवी की उक्ति का भली-भाँति निरीक्षण-परीक्षण करने की आवश्यकता है। इस उक्ति के अनुसार तो स्पष्ट है कि जहाँ तक भावुकमाता के भक्ति के गीतो ने उन पर प्रभाव विस्तार किया वहाँ कर्मनिष्ठ पिता के कारण उनकी आस्तिकता एक सक्रिय चेतना पर ही स्थित हो सकी। यही सक्रियता अपनी पूर्ण तीव्रता में गद्य मे दिखाई देती है और पद्य भी इससे अछूता नही रहा। महादेवी और मीरा मे इसी सक्रिय आस्तिकता की भावना ने एक वडा अन्तर ला दिया है (इस युग की सक्रिय आस्तिकता को प्रथम लेख में स्पष्ट किया जा चुका है)। महादेवी की कर्मण्यता गद्य में वौद्धिक रूप में और पद्य में भावात्मक रूप में व्यक्त हुई हैं। महादेवी की प्रथम उक्ति की पूरक स्वरूप निम्न उक्तियो पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है—"माँ से सुनी एक करुण कथा का प्राय सौ छन्दो में वर्णन कर मैं ने मानो खण्ड-काव्य लिखने की इच्छा भी पूर्ण करली।... इसके उपरान्त ही वाह्य जीवन के दुखो की ओर मेरा विशेप ध्यान जाने लगा था। पडोस की एक विधवा वधू के जीवन से प्रभावित हो कर मैं ने 'अवला' 'विधवा' आदि शीर्षको से

उस जीवन के जो शब्द-चित्र दिए थे वे उस समय की पत्रिकाओ में भी स्थान पा सके। पर जब मैं अपनी विचित्र कृतियो तथा तूलिका और रगो को छोडकर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थी। अत उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृ गारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारत माता' 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रच-नाओ की सृष्टि की वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थी।

"करुणा वहुल होने के कारण वुद्ध सम्वन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है। उस समय मिले हुए सस्कारो और प्र रणाओ का मैंने कभी विश्लेषण नही किया है, इसलिए उनके सम्बन्ध में क्या बताऊँ। इतना निश्चित कह सकती हूँ कि मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था और आगे चलकर अध्ययन और ज्ञान की परिधि के विस्तार में भी खोया नही वरन् उसमें नवीनता ही आई।"

"मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास मे उस वुद्ध प्रसूत चिन्तन का भी विशेष महत्त्व है जो जीवन की वाह्य व्यवस्थाओ के अध्ययन मे गति पाता रहा।"

"कह दे माँ क्या अव देखूँ।
देखूँ खिलती कलियाँ या,
प्यासे सूखे अधरो को।
तेरी चिर यौवन-सुषमा,
या जर्जर जीवन देखूँ।

× . × ×

सौरभ पी-पीकर वहता,
देखूँ यह मन्द समीरण।

दुःख की घूँटे पीती या,
ठडी सासो को देखूँ।

× × ×

कलियो की घन जाली में,
छिपती देखूँ लतिकाए
या दुर्दिन के हाथों में।
लज्जा की करुणा देखूँ।"

—रश्मि

यह कठ-स्वर नही, हृदय के अतल तल की मर्मभेदी पुकार है, यह वह सवेदना साधित सक्रिय आस्तिकता है जो महादेवी का सास्कारिक स्वभाव है। महादेवी जी इस क्षणभगुर जीवन की सार्थकता केवल परोपकार में देखती हैं—

"भिक्षुक सा यह विश्व खडा पाने करुणा प्यार,
हँस उठ रे नादान खोल दे पखुरियो के द्वार।
रीते कर ले कोष,
नहीं कल सोना होगा धूल।
अरे तू जीवन पाटल फूल।"

—नीरजा

इस प्रकार महादेवी मीरा के समान केवल स्वकेन्द्रित या आत्म-लीन ही नही। उन्होंने ससार के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह सुचारु रीति से किया है। वस्तुत मीरा में केवल वेदना है, महादेवी में वेदना और सवेदना (करुणा) दोनो।

महादेवी ने नीरजा की '२१ कविता में मीरा को प्रशस्ति दी है वहाँ भी मीरा को करुणा का 'मगल घट' लाने को कहा है ताकि विश्व का 'मरु शेष हुआ मानस सर' फिर से लहरा उठे और ह्रास जर्जर पतझर सम ससार पुन वासतिक वैभव से लहलहा उठे—

जग ओ मुरली की मतवाली !
दुर्गम पथ हो व्रज की गलियाँ,
शूलो में मधुवन की कलियाँ;
यमुना हो दृग के जल कण में;
वशी-ध्वनि उर की कम्पन में;
जो तू करुणा का मगल घट ले,
बन आवे गोरस वाली।
जग ओ मुरली की मतवाली।"

इस प्रकार महादेवी में केवल आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धो का गान ही नही, जीवन का व्याख्यान भी है। दु ख तो दोनो में है किन्तु महादेवी में इसका एक अलग स्वरूप है, उसने 'वाद' का रूप धारण कर लिया है।

मीरा में ससार से विरक्ति की भावना अति प्रबल है। 'भगति' देख वह राजी होती हैं 'जगति' देखकर रो देती हैं—

भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोही।

यह भी स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि ससार-सागर से पार जाने की रहती है, यमराज के फदे को तोड वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाना चाहती है। निम्न उदाहरणो से यह स्पष्ट है—

१ मीरां दासी राम भरोसे, जम का फदा निवार।
२— मीरां के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सू छुटकी।
३— मीरां के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फासी।

किन्तु महादेवी में ससार के प्रति एक प्रकार की सहज अनुरक्ति, श्वास-श्वास में शतश जीवन का उन्माद और कष्ट-कण्टको में भी गुलाबी मस्ती की प्रफुल्लता है:—

रोम-रोम में नन्दन पुलकित,
सास सास में जीवन शत शत ?

स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय ?
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या।

(१) "कण्टको की सेज जिसका आसुओ का ताज,
सुभग हँस उठ उस प्रफुल्ल गुलाब-सा ही आज।
बीती रजनी प्यारे जाग"

—नीरजा

निस्सदेह ऐसे ही फूल ससार का शृ गार है। प्रसाद जी ने कामायनी में भी यही तो लिखा है—

"प्रकृति के यौवन का शृंगार,
करेंगे कभी न बासी फूल"

महादेवी ऐसी लय-मुक्ति-नही चाहती जहाँ कर्मण्यता न हो। और वे चाहें भी क्यो ? जब एक एक अग में इन्द्रवाटिका और गुलाब की प्रफुल्लता, सुख-दु ख को 'भुज भर' मेंटने का अप्रतिम उत्साह और 'है मृत्यु मूक, जीवन सुख दु खमय मधुरगान' की तान सुनाई दे रही हो तो बन्धनो की कामना कितनी सत्य है, और जन्म-मरण की—घनवत् घिरने और घुलने की—आकाक्षा कितनी स्पृहणीय—

घन बनू वर दो मुझे प्रिय !
जलधि मानस से नव जन्म पा !
सुभग तेरे ही दृग व्योम में।
सजल श्यामल मन्थर मूक सा !
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले !
नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय।
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !

इस प्रकार मीरा में जहाँ केवल विरक्ति और 'गिरधर गोपाल'

का गान है वहाँ महादेवी जी में अलौकिक के गान के साथ जीवन का सम्मान भी है। उपर्युक्त उदाहरणो से यह भी स्पष्ट होगा कि महादेवी में मीरा-वत केवल वियोग शृंगार ही नही करुण रस और वीर रस भी है।

महादेवी निराकार की प्रेमिका है, मीरा साकार की आराधिका। एक रहस्यवादिन है दूसरी भक्तिन। एक का मन ही मन्दिर है, दूसरी वाह्य मदिर में सुध-बुध खोकर नाचती है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे
उस असीम का सूना मदिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।

—महादेवी

मै तो सांवरे के रग रांची
साजि सिगार वांधि पग घुंघरू लोक लाज तजि नाची।

—मीरा

मीरा में भी रहस्य भावना है। अवश्य ही कुछ पदो में उनके इष्टदेव निर्गुण से प्रतीत होते है और 'हरि अविनासी' को हृदयस्थ भी वताया है। वे योगियो के समान कभी-कभी 'सुरत निरत' का 'दिवला' भी सजोती है और 'प्रेम हटी' के तेल में 'मनसा' की 'वाती' 'दिन-राती' जगाने का आग्रह भी करती हैं। किन्तु ऐसी शब्दावलियो से हम उन्हे सतमार्गी नही कह सकते क्योकि इसी 'अविनासी' को उन्ही ने व्रज का छलिया गिरधर गोपाल कहा है। कुछ पदो में लीलाओ का गान भी है। वे मोर मुकुट धारी कृष्ण के रूप पर लुब्ध है और ऐसे उत्कट प्रेम के लिए निराकार भी साकार हो जाता है।

वस्तुत "मीरां वाई को उस प्रियतम के रूप का आध्यात्मिक रहस्य अवश्य ज्ञान है किन्तु उनके प्रेम की तीव्र भावना उसे अमूर्त मानकर अपनाने नही देती।

.... उनके भगवान की परिभाषा कदाचित् वही है जो श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक द्वारा प्रकट होती है—जैसे,

ववन्ति यत्तत्वितदस्तत्व, यद्ज्ञानमव्ययम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

अर्थात् जिसवस्तु को तत्वज्ञानी लोग तत्त्व अव्यय, ज्ञान, ब्रह्म वा परमात्मा नाम से अभिहित करते हैं उसीको भगवान भी कहा जा सकता है। उनका इष्टदेव इस प्रकार निर्गुण होता हुआ भी भगवान है।"

—परशुराम चतुर्वेदी

सत्य तो यह है कि मीरा 'दरद दिवानी' थी, भावुक-भोली] थी, इतनी तन्मय-तल्लीन थीं कि निर्गुण-सगुण और ज्ञान-भक्ति के तार्किक भेद का आकलन हो ही नही सकता था।

महादेवी और मीरा की प्रणय भावना में भी कुछ अन्तर है। मीरा में आत्मसमर्पण की भावना बडी प्रवल है किन्तु महादेवी अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सदैव सजग बनी रहती है। इन्हें विन्दु में सिन्धु भर लाने का आग्रह है सिन्धु में विन्दु विलीन करने का नही। अपनी हार में ये (अनिच्छापूर्वक) निर्वासित ही हो सकती है स्वेच्छापूर्वक अवसित नही—

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,

वस्तुत देवी जी बधना नही चाहती, प्रियतम को वांधना चाहती हैं। वे अनुरागिनी के साथ मानिनी भी है —

सजनि मधुर निजत्व दे,
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं,

स्कार कर सकता है 'लोक लाज' खो 'कुल कानि' होने की व्यवस्था भी दे सकता है दूसरे की वुद्धि भावुकता का नियन्त्रण करती है, सतुलन वनाये रखती है। मीरा में पवित्रपागलपन है (Dıjıve madness) है महादेवी मे सहज-सतुलन। इसी में इन दोनो की गरिमा है और अपने-अपने युग का गौरव भी।

यदि कवि की शक्तियो की परीक्षा की जाये तो महादेवी के पास प्रतिभा, शिक्षा, अभ्यास सभी कुछ है, किन्तु मीरा मे प्रतिभा ही है शिक्षा और अभ्यास नही। इसी कारण इन दोनो की कला में अन्तर आ गया है। मीरा केवल साधिका है—कविता करना उसका लक्ष्य नही। महादेवी की साधना भी सौंदर्य-साधिक है —वे कलाकार भी है। अतए महादेवी के गीतो में कल्पना का जो रग-रूप, भाषा की जो लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, स्वर की जो सूक्ष्म तरल योजना अलकृति का जो सौंदर्य-सभार और कला का जो अतिशय परिष्कार मिलता है वह मीरा में ढूंढना व्यर्थ है। किन्तु मीरा के गीतकाव्य में जो सहजता और स्पष्टता, अन्विति और सक्षिप्तता तथा सक्षिप्तता और सजीवता मिलती है वह महादेवी में नही। इसका कारण है मीरा का प्रवल भावावेश, सशक्त अनुभूति, आकुल तन्मयता, अचल निर्भीकता और सहज स्वच्छन्दता जो वरवस अनायास गीत का रूप धारण कर लेती है, सगीत भी हृदय के अतराल से फूट पडता है और भापा और भाव में भी कोई व्यवधान नही रहता। 'रुदन का हंसना ही तो गान —गुप्त जी की यशोधरा की पक्ति और वच्चन की निम्न पक्तियां—

मं रोया तुम कहते हो गाना,
म फूट पडा, तुम कहते छद वनाना।

मीरा ही में पूर्णत चरितार्थ होती है। महादेवी के गीतो में जिस साकेतिक लक्षणा-व्यजनात्मक शैली का प्रयाग हुआ है उसका मूल सम्वध

कल्पना एव बुद्धि तत्व से अधिक है जो गीतकाव्य के इतन अनुकूल नही जितना कि रागात्मक भाव तत्व। वैसे भी उनमें दार्शनिकता का आग्रह और एक प्रकार का आत्म सकोचन भी है। इसी से महादेवी के गीत अपेक्षाकृत अधिक सहृदय सवेद्य नही हो सके और उनमें उस मदिर मार्मिकता का अभाव मिलता है जो मीरा के गीतो की विशेषता है। फिर भी मीरा के समान महादेवी भी अपने युग की सर्वश्रेष्ठ गीति कवयित्री हैं दोनो म अपने-अपने युग की अभिव्यक्ति-शैली है। महादेवी के कला-गीत हैं और मीरा के लोक-गीतो के अधिक निकट।

महादेवी का प्रकृति-चित्रण

मनुष्य का पालन-पोषण प्रकृति की क्रोड में हुआ है। पल-पल परिवर्तिनी, विविध-रूप धारिणी प्रकृति की सुन्दरता-विचित्रता, विराटता-रहस्यमयता मनुष्य को सनातन काल से प्रभावित-आन्दोलित करती रही है। फिर भला सवेदनशीलता का प्रतिरूप कवि इस से कैसे असम्पृक्त रह सकता है। जब नीहार के अवगुठन को अनावृत कर रश्मि छवि दिखाती है, विहग रव मगल गान गाता है, प्रात सुनहरे अचल में रोली बिखेर हँस देता है और लहरो की बिछलन पर भोली किरने मचल पडती है, तब कवि की भाव-लहरियाँ भी मचलने लगती है। जब इन्द्रधनुषी-चीर सजाये, महावर अजन लगाये, अलि-गु जित मीलित पकज के नूपुरो से रुन-झुन करती हुई साँझ, अन्धकार से मिलने आती है, गोधूल नभ के आगन में अगणित झिल-मिल दीपक जलाती है, निशा की अलको को राकेश चाँदनी से धोने लगता है, तब कवि भी चाँदनी की सित-सुधा भरी बादल की प्यालियो मे अपनी तूलिका डुबो कर चित्राकन के लिये लालायित हो उठता है। कोकिल की काकली, पक्षियो का कलरव, भ्रमरो का गुन्जन और पपीहे का 'पी कहा' का अनोखा सगीत उसे लुब्ध ही नही करता, उसके अन्तस्सगीत को प्रबुद्ध भी कर देता है। महादेवी की सौंदर्य-भावित कविता भी प्रकृति की वर्ण-छटा से सज्जित तथा उस के सगीत से मुखरित है।

महादेवी 'नीहार से 'दीपशिखा' तक—प्रत्यूष की चित्रित नीहा-

रिका से रजनी की दीपशिखा की भव्य-ज्योति तक—प्रकृति को स्थान देती रही है। रचनाओ के नाम रूपी वाह्य कलेवर से लेकर भावना रूपी अन्तर्जगत के अणु-अणु प्रकृति से अनुप्राणित है।

अव प्रश्न यह उठता है कि महादेवी ने प्रकृति वर्णन क्यो किया ?

छायावादी काव्य में प्रकृति का प्राधान्य रहा है। 'छायावाद, स्थूल से विमुख हो कर सूक्ष्म के प्रति आग्रह" का नाम है।[1] द्विवेदी युगीन कविता में वहिर्मुखी दृष्टि कोण इतना वढ गया था कि अन्तर्मुखी-प्रवृतियो ने छायावादी कवियो को प्रकृति की ओर आकृष्ट किया। प्रकृति के माध्यम से वे अपनी भावाभिव्यक्ति भी कर सके—स्थूल को सूक्ष्म रूप भी दे सके। महादेवी—प्रसाद, पन्त निराला से वाद में ही साहित्य क्षेत्र में आई इसलिए नूतन, परम्परा-मुक्त प्रकृति-वर्णन की परम्परा महादेवी को उत्तराधिकार में मिली। महादेवी ने छायावाद की जो परिभाषा दी है, उसमें प्रकृति को विशिष्ट स्थान प्राप्त है—"छायावाद जीवन का प्रकृति के वीच उद्गीथ है।"

दूसरा कारण यह है कि महादेवी ने सस्कृत साहित्य का विशेष अध्ययन किया था। कालिदास, वाणभट्ट' भवमूति आदि की रचनाओ में प्रकृति के सुन्दर सश्लिष्ट चित्र मिलते है। उनको कालिदास का 'रघुवश' तथा भवभूति का 'उत्तर राचरित' और उषा-मारुत के गीत भी विशेष प्रिय रहे है। इस प्रकार सस्कृत साहित्य से भी उनको प्रकृति चित्रण की प्रेरणा मिली।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि महादेवी पर तो अद्वैतवाद का प्रभाव है जिसके अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन में प्रकृति व्यवधान डाल सकती है, किन्तु जैसा हम आगे देखेंगे कि प्रकृति उनकी रहस्य-भावना में विशेश सहायक सिद्ध हुई है, मधुर प्रिय की भावना से उनको सुख-दुख जड-चेतन—सभी प्रिय हो गये हैं, प्रकृति को वे न

---

१. डा० नगेन्द्र

तादात्म्य, सौन्दर्य के कारण भी है किन्तु महादेवी नें यह प्राय रहस्य प्रवृत्ति के कारण।

प्रकृति ऐसे व्यापारो से युक्त है कि कवि की भावुकता उस से उपदेश-सन्देश ले सकती है। फूल चाहे हँसे अथवा नही किन्तु कवि हँसने का मूल्य समभता है। अतएव भावुक कवि अपने पुलकित भावो का आरोप फूल पर कर गा उठजा है—"फूलो से तुम हँसना सीखो' चाहे इस में कुछ फूल की भी विशेपता रहती है। वर्डस्वर्थ को कानन का क्षुद्रतम कुसुम भी गम्भीर तम प्रेरणा दे सकता है—"To me the meanest flower that blows, can give thoughts that do often lie too deep for tears" इसे उपदेशात्मक प्रकृति-वर्णन भी कहा जा सकता है। महादेवी भी अपने जीवन-दीप को प्रकृति से उद्‌वोधित करती है—

जलते नभ में देख असख्यक,
स्नेह-हीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत ले घिरता है वादल!
विहँस-विहँस मेरे दीपक जल!

—नीरजा

अयवा

कटकों की सेज जिस का, आसुओं का ताज
सुभग! हस उठ भफुल्ल गुलाव ही सा आज!

—नीरजा

उक्त पक्तियो की तरह 'नीहार' की पाँचवी कविता में कवयित्री ने प्रकृति से व्यञ्जनात्मक सन्देश (अभिधात्मक उपदेश नहीं) लिये हैं। कुछ पक्तियाँ पठनीय हैं—

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल
जिस के पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल ?

अब इन में क्या सार, मधुर जब गाती भौंरो की गुन्जार,
मर्मर का रोदन करता है कितना निष्ठुर है संसार ।

महादेवी में 'सान्ध्यगीत' में केवल एक ऐसी कविता है जहाँ प्रकृति, 'हिमालय', का सुन्दर स्वतन्त्र चित्रण हुआ है—

तथा —

हे चिर महान् !
यह स्वर्ण रश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रंगीन हास,
सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मलमल जाता वातास !
पर रागहीन तू हिम निधान !
टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार-हार,
बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुन कर जलते कण की पुकार,
सुख से विरक्त दुख में समान !

किन्तु इस गीत में भी अन्त में, वह हिमालय से तादात्म्य करने की ही इच्छुक है—

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से ही मिलाप ।
तन तेरी साधकता छू ले,

मन ले करुणा की थाह नाप !

उर में पावस दृग में विहान !

इस प्रकार महादेवी में ऐसी कोई कविता नही जहाँ प्रकृति का भाव-निरपेक्ष चित्रण हुआ हो। वैसे गीतो में भावनाओं के साथ-साथ प्रकृति का सुन्दर सश्लिष्ट चित्रण भी हुआ है। नीरजा की १६ वी कविता में तो एक मनोरम चित्र-माला ही मिलती है। तम, प्रभात, और साँझ के चित्र देखते ही बनते है। निम्न पक्तिया आस्वादनीय हैं—

(१) तम ने धोया नभ पथ,
सुवासित हिम जल से।
सूने आँगन में दीप,
जला दिये झिलमिल से।

(ii) धर कनक-थाल में मेघ,
सुनहला पाटल सा।
कर वालारुण का कलश,
विहग रव मगल सा।
आया प्रिय पथ से प्रात,
सुनाई कहानी नहीं।
मै प्रिय पहचानी नहीं।

(iii) नव इन्द्र धनुष सा चीर,
महावर अ जन ले।
अलि-गुञ्जित मीलित पकज-
-नूपुर रुनझुन ले।
फिर आई मनाने साझ,
मैं वेसुध मानी नहीं।
मै प्रिय पहचानी नहीं।

इन चित्रो में भी कवयित्री की वेदना तथा रहस्य-वृत्ति का रागात्मक योग स्पष्ट परिलक्षित है। प्रकृति के ऐसे चित्रो को मूर्तिमान करने के लिये इन्द्रियो के विषयो—रग, गध, ध्वनि आदि—का समावेश आवश्यक है और यही उक्त उदाहरणो में है। कनक, सुनहला, महावर, अजन तथा इन्द्रधनुष में वर्ण-योजना की सुरुचि (Sense of colour) स्पष्ट है। तीसरे चित्र की ध्वनि योजना भी सुन्दर है। प्रथम चित्र में 'झिलमिल' शब्द से टिमटिमाते तारे सामने आ जाते हैं। 'सुवासित' में गध की विशेषता है।

महादेवी ने अधिकतर मानवीकरण कर के ही आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण किया है। उपर्युक्त उदाहरणो में भी प्रात' प्रियतम के पथ से आता है, 'साझ' प्रियतम की दूतिका के रुप में कवयित्री को मनाने आती है और निम्न उदाहरणों में रजनी-नायिका शृगार कर के प्रियतम से मिलने—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से,
आ वसन्त रजनी।
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन।
रश्मिवलय सित घन-अवगुण्ठन;
मुक्ताहल अभिराम विछा दे,
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसन्त-रजनी।

सौन्दर्यास्वादन के लिये पावस ऋतु का सद्य स्नात नायिका के रूप में निम्न चित्र भी अवतरणीय है—

रुपसि तेरा घन केश-पाश।
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश।

नभ गगा की रजत धार में,
धो आई क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अ ग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात !
भीगी अल ों की छोरो से,
चूती बूँदें कर विविध लास !

—नीरजा

यह प्रकृति का चेतनीकरण-मानवीकरण क्यो हुआ है, इसके निम्न कारण हो सकते है—

१ स्वाभाविक कारण—भावना और कल्पना के अतिरेक में कवि प्रकृति को अपने ही प्राणो से अनुप्राणित कर उसका मानवीकरण कर देता है।

२ दार्शनिक कारण— महादेवी ने छायावाद का आधार सर्वात्मवाद वताया है जिसके अनुसार जड-चेतन में एक ही सत्ता व्याप्त है। महादेवी के अनुसार "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्वन्ध में प्राण डाल दिये, जो प्राचीन काल से विम्व प्रतिविम्व रुप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दु ख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पडती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरुपता के समान अनेक रुपो में प्रकट एक महाप्राण वन गई, अत अव मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस-विन्दुओ का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलिया और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड अन्धकार और उज्जवल विद्युत रेखा, मानव की लघुता, विशालता, कोमलता, कठोरता, चचलता और निश्चलता मोहज्ञान का केवल प्रतिविम्व न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न महोदर हैं। जव प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का

प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ है, तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व ले कर जगमगा उठा"। छायावादी कविता में इसी सर्ववादी प्रकृति-दर्शन की प्रधानता है। महादेवी को एक तो प्रसाद' पन्त, निराला से प्रकृति के मानवीकरण की परम्परा मिली। दूसरे उन्होंने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया था जहाँ प्रकृति पर चेतना का आरोपण हुआ है। वैसे पश्चिम के कुछ रोमानी कवियो और दार्शनिक कवियो का दृष्टिकोण भी सर्ववादी (Pantheistic) रहा है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि महादेवी और प्रसाद ने प्रेरणा वहाँ से नही ली चाहे पन्त ने ली हो। 'कमलेश' को इण्टरव्यू देते हुए महादेवी कहती है" विदेशी लेखक मुझे कोई पसन्द नही। शेली, बायरन आदि 'फिन फिन' करते नजर आते है। उनमे मुझे कुछ नही मालूम पडता, मेरा सर्वप्रिय ग्रन्थ तो ऋगवेद है। · · ·बचपन से तो संस्कृत पढती रही और अंग्रेजी कवियो को पढने से पहले ही नीहार लिख चुकी थी। वह ७—८—९ दर्जे की रचना है।"

२ छायावाद स्थूलगत सूक्ष्म का चित्रण है। 'छायावाद सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह है किन्तु यथार्थ के प्रति नही' अतएव सौन्दर्य, स्वतन्त्रता, दिव्यता करुणा आदि की जो भावनाए छायावादी कवि वास्तविक जगत में न देख सके, श्री-संयुत प्रकृति में उनको खोजने लगे। कवि प्रकृति पर अपनी ही भावनाओ का आरोप कर देता है।

किस प्रकार यह समस्त प्रकृति मानव से अभिन्न है और जड-चेतन में कवयित्री को तद्रूपता भासित होती है, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है—

× अज्ञेय-त्रिशंकु

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पन्दन,
यह रज क्या ? नव मेरा मृदु तन,
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण,
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन,
मेरे सब, सब में प्रिय तुम,
किस से व्यापार करूँगी मैं ?
आँसू का मोल न लूँगी मैं !

—नीरजा

नीरजा की ५८ कविता में सारभूत सत्ता अथवा विराट सत्ता की अप्सरा के रूप में कल्पना की गई है, जिसमें सृष्टि-प्रलय, ससीम-असीम, आलोक-तिमिर एक सतुलित नृत्य का रूप धारण कर लेते हैं—

लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मजीर !
उडता झझा में अलक जाल,
मेघो में मुखरित किंकिणि स्वर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

यहाँ समस्त प्रकृति, ब्रह्म का ही अग है। इस प्रकार प्रकृति, ब्रह्म और मानव दोनो से अभिन्न है। अतएव महादेवी की रहस्य-भावना में, आत्मा परमात्मा की मिलन-साधना में, प्रकृति विशेष सहायक सिद्ध हो सकती है। यही नही महादेवी ने अमर प्राकृतिक उपकरणो से अपना ही शृ गार कर लिया है—

कमल दल पर किरण अकित
चित्र हूँ मैं क्या चितेरे ?
बादलो की प्यालियाँ भर
चादनी के सार से,

तूलिका का कर इन्द्र-धनु
तुम ने रँगा उर प्यार से;
काल के लघु अश्रु से
घुल जायेंगे क्या रंग मेरे ?
तड़ित सुधि में, वेदना में
करुण पावस रात भी;
आंक स्वप्नों में दिया
तुम ने वसन्त प्रभात भी,
क्या शिरीष-प्रसून से
कुम्लायेंगे यह साज मेरे ?

—नीरजा

ऐसी अवस्था मे महादेवी मे प्रकृति के साथ तादात्म्य भावना के अनेक चित्र मिलते हैं। ऐसा दिखाई देता है कि प्रकृति उन के जीवन का अविभाज्य अंग बन गई —

'मैं बनी मधुमास आली
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड़ आई री दृगो मे
सजनि कालिन्दी निराली'।

—नीरजा

अथवा

विरह का जल जात जीवन, विरह का जलजात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इस का अश्रु गिनती रात
जीवन विरह का जल जात।

—नीरजा

अथवा

मैं नीर भरी दुख की बदली—सांध्यगीत

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पन्दन;
यह रज क्या ? नव मेरा मृदु तन;
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण,
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन,
मेरे सब, सब में प्रिय तुम,
किस से व्यापार करूँगी मैं ?
आँसू का मोल न लूगी मैं !

नीरजा की ५८ कविता में सारभूत सत्ता अथवा
की अप्सरा के रूप में कल्पना की गई है, जिसमें सृष्टि-
असीम, आलोक-तिमिर एक सतुलित नृत्य का रूप धार

लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मजीर !
उडता झझा में अलक जाल,
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

यहाँ समस्त प्रकृति, ब्रह्म का ही अग है। इस प्रका
और मानव दोनो से अभिन्न है। अतएव महादेवी की
में, आत्मा परमात्मा की मिलन-साधना में, प्रकृति विशेप
हो सकती है। यही नही महादेवी ने अमर प्राकृतिक उपक
ही शृगार कर लिया है—

कमल दल पर किरण अकित
चित्र हूँ मैं क्या चितेरे ?
बादलो की प्यालियाँ भर
चांदनी के सार से;

ज्योत्स्ना-स्नात वासती निशा में शेफाली का किसी के स्पर्श से सकुचाना, लजाना ओर खिलना, मौलश्री का अलसाकर शयन करना आदि—ये सव मादक वातावरण यदि उद्यान में एकाकी घूमती हुई नायिका को कम्प रोमाच और अश्रु सात्विको का सम्भार न दे तो और क्या दे ? यहाँ प्रकृति ने केवल उद्दीपन के निर्जीव उपकरण ही नही जुटाये अपितु वह भी सप्राण है, हास-विलास में मग्न है ।

इस प्रकार उद्दीपन रूप में भी प्रकृति का चेतनीकरण-मानवीकरण हुआ है। इसी से वह मूक से मुखर वन गई है। अव वह दूतिका नहीं सगिनी है, सुख-दु ख में साथ देने वाली सहचरी है। उद्दीपन रूप में भी कवि का पूरा तादात्म्य प्रकट होता है। यथा निम्न उदाहरण मे जीवन को विरह का जलजात वने देख, काल (समय) शुभाकाक्षी वनकर पल (क्षण) रूपी आंसुओ का हार उपहार स्वरूप देकर उसकी कुशल-क्षेम, और पवन परम निश्वासें भरता हुआ उसकी व्यथा-कथा पूछता है —

काल इस को दे गया पल-आंसुओ का हार,
पूछता इस की कथा निश्वास ही में वात !
जीवन विरह का जल जात ।

रीतिकाल में नायक-नायिका उद्दीप्त होते थे, अव कवि स्वय आश्रय होता है। इस प्रकार 'भावाक्षिप्त' तथा 'उद्दीपन रूप' दो हो प्रकृति के साथ तादात्म्य हो जाता है और यही रूप महादेवी सर्वाधिक है।

महादेवी में परोक्ष के सकेत के रूप में प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। प्रकृति उस प्रणेता की प्रतिकृति है। प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य, उसका विपुल व्यापार, उस अनन्त-अज्ञात की ओर इगित (सकेत) करता दिखाई देता है। पन्त जी को वह रहस्यमय नक्ष मौन निमन्त्रण देता है, तडित से इगित करता है, सौरभ से सन्देशा भेजता है, लहरो से कर उठाकर वुलाता और खद्योतो से पथ दिख

नीरजा की एक अन्य कविता में कवयित्री तादात्मय भावना के लिए विरोधी तत्वो को चुन अपनी महत्ता अनोखी विधि से व्यक्त करती है—

जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर।
दोनों मिल कर देते रजकण,
चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर।
जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रु माल।
मैं पिक वन गाती डाल डाल,
सुन फूट फूट उठते पल पल,
सुख-दुख मञ्जरियों के अंकुर।

यहाँ कवयित्री प्रकृति से अधिक सुखी-समृद्ध है, अतएव वह करुण प्रकृति को भी माधुर्य प्रदान करती हैं।

उद्दीपन रूप में प्रकृति कवि के भावो को उद्दीप्त करती है। महादेवी में यह उद्दीपन का रूप ही सर्वाधिक है। किन्तु यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप वैसे नही है, जैसे रीतिकाल में था। रीतिकालीन कवि प्रकृति का स्वतन्त्र सौन्दर्य देखने में असमर्थ थे। किन्तु यहाँ उद्दीपन रूप में भी प्रकृति अपनी स्वतन्त्र सत्ता-महत्ता बनाये रखती है। निम्न उदाहरण से यह स्पष्ट है।—

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यो भर भर ?
सकुच सजल खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुञ्जों में
रजत श्याम तारो स जाली,
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधु-कण
हर सिंगार झरते हैं झर झर।
आज नयन आते क्यों भर भर !

ज्योत्स्ना-स्नात वासती निशा में शेफाली का किसी के स्पर्श से सकुचाना, लजाना ओर खिलना, मौलश्री का अलसाकर शयन करना आदि—ये सब मादक वातावरण यदि उद्यान में एकाकी घूमती हुई नायिका को कम्प रोमाच और अश्रु सात्विको का सम्भार न दे तो और क्या दे ? यहाँ प्रकृति ने केवल उद्दीपन के निर्जीव उपकरण ही नही जुटाये अपितु वह भी सप्राण है, हास-विलास में मग्न है ।

इस प्रकार उद्दीपन रूप में भी प्रकृति का चेतनीकरण-मानवीकरण हुआ है । इसी से वह मूक से मुखर बन गई है । अब वह दूतिका नही सगिनी है, सुख-दु ख में साथ देने वाली सहचरी है । उद्दीपन रूप में भी कवि का पूरा तादात्म्य प्रकट होता है । यथा निम्न उदाहरण में जीवन को विरह का जलजात बने देख, काल (समय) शुभाकाक्षी बनकर पल (क्षण) रूपी आँसुओ का हार उपहार स्वरूप देकर उसकी कुशल-क्षेम, और पवन परम निश्वासें भरता हुआ उसकी व्यथा-कथा पूछता है —

> काल इस को दे गया पल-आँसुओ का हार,
> पूछता इस की कथा निश्वास ही में बात !
> जीवन विरह का जल जात ।

रीतिकाल में नायक-नायिका उद्दीप्त होते थे, अब कवि स्वय आश्रय होता है । इस प्रकार 'भावाक्षिप्त' तथा 'उद्दीपन रूप' दो हो प्रकृति के साथ तादात्म्य हो जाता है और यही रूप महादेवी सर्वाधिक है ।

महादेवी में परोक्ष के सकेत के रूप में प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है । प्रकृति उस प्रणेता की प्रतिकृति है । प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य, उसका विपुल व्यापार, उस अनन्त-अज्ञात की ओर इगित (सकेत) करता दिखाई देता है । पन्त जी को वह रहस्यमय नक्ष मौन निमन्त्रण देता है, तडित से इगित करता है, सौरभ से सन्देशा भेजता है, लहरों से कर उठाकर बुलाता और खद्योतो से पथ दिख

लाता है। यही नही ओस में ढुलककर कवि का ध्यान भी खीचता है। महादेवी को भी आकाश मुस्का कर प्रियागमन की सूचना देता है—

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?

इसीलिये तो प्रकृति उल्लास-मग्न है—

विद्युत के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता, रोता जलधर
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर,
दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक-रजत के मधु-प्याले हैं।
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?

—नीरजा

नये घन' भी प्रियतम से सन्देश लाते हैं —

लाये कौन सन्देश नये घन !
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्दन हृदय में उस के उमडे री पुलको के सावन।
लाये कौन सन्देश नया घन।
जड जग स्पन्दित
निश्चल कम्पित
फूट पडे अवनी के संचित अपने मृदुतम
अंकुर बन बन।
लाये कौन सन्देश नया घन।

परो के संकेत के अरिरिक्त परोक्ष की अभिव्यक्ति-आभास के रूप में भी प्रकृति-चित्रण हुआ है। इसीलिए वह 'निर्मम' कण-कण में बिखरा' हुआ है (नीहार)। अतएव परोक्ष से मिलने के लिए वे प्रत्यक्ष के कण-कण से परिचित हो गई हैं—

अलि, मैं कण-कण को जान चली !
सब का क्रन्दन पहचान चली !

—दीपशिखा

आलकारिक रूप में महादेवी ने प्राकृतिक उपमानो के चयन में विशेष सुरुचि का परिचय दिया है । प्रकृति के नाना पदार्थ कवयित्री की अलकरण-वृत्ति के उपकरण-उपादान बने है। इसका कारण यह है कि मन के शतरगी स्वप्नो को प्रकृति की रगमयी वर्णच्छटा आकने में पूर्ण समर्थ हो सकती है। प्रिय-मिलन के साधना-पथ पर बढते हुए महादेवी की जिस हर्षोल्लास तथा विरह-वेदना का अनुभव होता है उसको व्यक्त करने के लिए क्रमश वसत और वर्षा ऋतुओ के उपकरणो का उन्होने अधिक प्रयोग किया है । यथा निम्न पक्तियो मे विरह की तीव्रता की व्यजना में 'अधिक' अलकार में प्रयुक्त प्राकृतिक उपकरणो, 'झझावात' और 'प्रलय के घन', ने कितना योग दिया है—

'मेरी निश्वासो से बहती रहती झझावात
आँसू में दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात'

उपरोक्त प्राकृतिक उपमानो के चयन में महादेवी की दृष्टि प्रभाव-साम्य पर विशेष रूप से रही है। प्रसाद ने भी 'आँसू' में अपनी वेदना-व्याकुलता को 'झ झा झकोर' के द्वारा व्यक्त किय था—

'झझा झकोर गर्जन है
बिजली है नीरद माला
पाकर इन शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला'

महादेवी को करुणा के कारण घन का उपमान बडा प्रिय है—

(१) घन बनू वर दो मुझे प्रिय

—नीरजा

(२) मै नीर भरी दुख की बदली

—साध्यगीत

घन की इसी कल्याणी प्रकृति की परिचायक ऋग्वेद का निम्न-पक्ति है—

सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृत नाम भेजिर ।

अर्थात "कल्याणार्थ उत्पन्न, ज्योतिर्मय वक्षवाले इन आकाश के ायको की ख्याति अमर है।" महादेवी पृथ्वी पर ही उन आकाश के ायको की अमर गायिका है।

छायावादियो ने प्रतीकात्मक शैली के द्वारा अपनी भावनाओ और विचारो को स्पष्ट किया है। ये प्रतीक प्राय प्रकृति के क्षेत्र से लिए गए है। इन प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग इस प्रवलता से हुआ है कि इनको साथ रखकर ही छायावाद के अस्तित्व की सम्भावना हो सकती है। एक वात उल्लेखनीय है कि छायावादी कवियो ने प्रतीको का प्रयोग जहा शैली के रूप मे किया है वहाँ अनेक स्थानो पर शैली तथा विपय वस्तु दोनो रुपो में भी और ऐसा होने से दुहरा अर्थ निकलता है। यथा महादेवी की निम्न कविता लीजिए जिसमें परोक्ष सत्ता को नारी का स्वरूप दे दिया गया है—

रुपसि तेरा घन केश-पाश
भीगी अलकों की छोरों से,
चूती बूँदे कर विविध लास

—नीरजा

यदि कोई इसमें परोक्ष सत्ता का आभास न भी पा सके, तव भी यह चित्र मनोरम है।

महादेवी ने गहन-गूढ आध्यात्मिक विचारो को प्राकृतिक प्रतीको के माध्यम से किस सरल-सुवोध रीति से व्यक्त किया है, इसके लिये निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

क्या नई मेरी कहानी।
सजल वादल का हृदय कण।
चू पडा जव पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित
तृपित दरका पंक का उर,
मिट गई उस से तडित सा,

हाय वारिद की निशानी।
करुण वह मेरी कहानी।

जीव के ब्रह्म से पृथक होने की अवस्था का जो अप्रिय परिणाम हो सकता है वही उपर्युक्त कविता से स्पष्ट है।

इसी प्रकार निम्न पक्तियो में मुर्झाई कलिया पीडित-उपेक्षित नारियो की प्रतीक है—

मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलिया देखो ।

मानसिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रतीकात्मक चित्रण साध्य गीत की इन पक्तिको में स्पष्ट है—

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।
जग पडा छू अश्रु धारा
हत परों का विभव सारा
अब अलस वन्दी युगों का
ले उडेगा शिथिल कारा
पख पर वे सजल सपने तोल दो।"

अनेक प्राकृतिक उपकरणो का प्रसगानुकूल सुन्दर प्रयोग हुआ है। नीरजा की प्रथम कविता में ही भाव-व्यञ्जक प्राकृतिक प्रतीको का प्रयोग हुआ है और यही क्रम आगे की कविताओ में भी देखने को मिलता है।

इस प्रकार विषय और अभिव्यक्ति में अतुल योग देने के कारण महादेवी की कविता के लिए प्रकृति वरदान सिद्ध हुई है। किन्तु प्रकृति भी महादेवी की लेखनी के स्वर्णिम स्पर्श से जगमगा उठी है, वह नीलम तथा पद्मरागो से खेलने लगी है। जिस साधिका का 'चिर सुन्दर' से नाता हो, उसकी सहयोगिनी प्रकृति वैभव-वेष्टित न हो तो

और किसकी होगी ? प्रकृति का निम्न वैभव-वलित स्वरुप आस्वादनीय है—

मत अरुण घूँघट खोल री।
तरल सोने से घुली यह
पद्मरागो से सजी यह
उलझ झलकें जायेगी
मत अनिल पथ में डोल री।
निशि गई मोती सजाकर
हाट फूलो में लगाकर
लाज से गल जायेंगे
मत पूछ इन से मोल री
स्वर्ण कुम कुम में बसा कर
है रगी नव मेघ चूनर ⋯ ।

उनके निशि दिन, रजत और कचन से आगन को लीपते है और आत्म विभोरता में मधु से पूर्ण रजत-कनक के प्यालो का विनिमय भी करते है। इतना ही नही, इनका अलि और अन्धकार भी नीलम सा है।

डा० नगेन्द्र ठीक ही लिखते हैं "कि महादेवी की कला तितली के पखों और फूलो की पखडियो से चुराई हुई है।" निस्सन्देह इनकी रगीन कल्पनाओ और कला के साज-शृ गार का आधार प्रकृति है—छिन्न मुक्तावलियो के मजुल वन्दनवार, सौरभ का केश जाल, वुद वुद की लडियो में ग्रथित श्यामल केशकलाप, मकरदपगी केसर पर जागृत मधुपरिया, सध्या के शुभ्र-मुख पर किरणो की फुलझडिया, नभ की दीपावलिया, मर्मर का मधुर सगीत, अलिगु जित मीलित पकज के नूपुर, अलिगु जित पद्मो की किंकिणी, चन्द्रमा की चांदनी की थाली, मरकत का सिंहासन, कुन्दकुसुम के मधु पुञ्ज, नव इन्द्र-धनुष सा सतरगी चीर, मन्द मल-

यानिल के उच्छ्वास, छलकता मधु का कोप, शशि का नूतन शीश-फूल तारकमय नव वेणी-वन्धन, नीलम मन्दिर की हीरक प्रतिमा सी चपला, मेघो का मतवालापन, अवनि अम्वर का रुपहलापन——ऐसे सौन्दर्य और ऐश्वर्य से महादेवी की सभी कृतिया जगमगा रही है। यह भी स्पष्ट है कि महादेवी ने अधिकाशत साध्यकालीन उपकरणो को ही लिया है।

रहस्यवादी होने के कारण महादेवी ने प्राकृतिक क्षेत्र मे अधिकाशत मागलिक सामग्री का, पुजा की सामग्री का प्रयोग किया है यथा (नी० ६।)

रगो मे महादेवी को रजत और स्वर्णिम-वर्ण वहुत प्रिय है और फूलो में कमल, हर सिगार और पाटल। वैसे अशोक वकुल, मौलश्री, रजनी गन्धा, परिजात पुष्प भी आए हैं। पक्षियो मे उनको पिक चातक, मयूर और मधुप प्रिय है।

सारत महादेवी की कविता प्रकृति से इतनी अनुप्राणित है कि ऐसा दिखाई देता है कि प्रकृति को इन्होने आत्मसात कर लिया है और वह स्वय भी उसमे समाहित हो गई है। यद्यपि महादेवी का प्राकृतिक क्षेत्र सीमित है—पत, प्रसाद और निराला का क्षेत्र विस्तृत है—और उन्होने केवल मनोरम रूप ही लिए हैं, प्रसाद और निराला के समान परुप विराट नही, पत की मीनाकारी भी उनमें नही, तथापि प्राकृतिक सीमित सामग्रो की विविध आकर्पक सयोजनाएँ तथा रगो का तरल मिश्रण उनकी अपनी वस्तु है।

महादेवी का गीत काव्य

मानव के उच्चारण प्रयत्न का सर्वप्रथम स्फुरण गीत रहा होगा। जैसे प्रभात की 'प्रथम रश्मि' का स्पर्श पाकर रगिणी चहचहा उठती है, मेघो को उमडता-घुमडता देख मयूर नाच उठता है, वसन्त को आता देख कोकिल कूक उठती है, उसी प्रकार मानव के हर्ष-हूक के साथ गीत भी फूट पडा होगा क्योकि मानव हृदय के हर्ष-विषादमय स्पदनो के साथ गीत का सहज सम्बन्ध है। इन कवियो की निम्न प्क्तियाँ गीत के मूल को भली-भाँति व्यक्त कर रही हैं—

वियोगी होगा पहला कवि,
ग्राह से उपजा होगा गान
उमड कर ग्राँखो से चुपचाप,
वही होगी कविता ग्रनजान।

—पन्त, पल्लव।

मैं रोया तुम कहते हो गाना।
मै फूट पडा, तुम कहते छन्द बनाना॥

—बच्चन

मैं ग्रश्रु-तरल,
× × × ×
मै फूट पडी ले स्वर वैभव

महादेवी, दीप-शिखा

रुदन का हँसना ही तो गान

गुप्त, यशोधरा

मानव के सुख-दुख जितने सनातन है, गीत भी उतने ही पुरातन हैं। गीत के मूल में मनुष्य की सहज-प्रवृत्ति है। गायक अपने सुख-

दु खो को अधिक से अधिक व्यापकता देने की इच्छा करता है और यही गाने की अनिवार्यता सिद्ध करता है। "आनन्द से मनुष्य जब चचल होता है तब भी गाता है और व्यथा से जब हृदय भारी हो जाता ह, तब भी गाता है, क्योकि एक उसके हर्ष को बाहर फैलाकर जीवन को सतुलन देता है और दूसरे उसकी निस्तब्धता में सवेदन की लहर पर लहर उठाकर जीवन को रुद्ध होने से बचाता है।"[1]

डा० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है, हिन्दी में—विश्व के लगभग सभी साहित्यो में—गीत परम्परा आदि काल से ही चली आती है। या यो कहिए कि कविता का मूल रुप ही गीत है।

महादेवी ने एक मात्र गीत ही लिखे हैं। इसके कारण निम्न-लिखित हो सकते हैं —

१ आत्म निवेदन का सहज माध्यम— "मेरे गीत मेरा आत्म-निवेदन मात्र हैं।"[2]

वैसे भी गीत की शक्ति वाणी से अधिक है, क्योकि वह शब्दो के चयन को लय में सतरण देकर उनकी व्यापकता और बढा देता है।

२ गीति काव्य की स्त्रैण प्रकृति—गीतिकाव्य की हार्द (Spirit) कोमल है जो नारी के स्वभावानुकूल है। "वैसे तो विश्व-साहित्य मे ही सख्या और गुण के परिमाण में लेखिकाए और कवयित्रियां कम ही हुई है, परन्तु जो हुई उन्होने सदा मुक्तक गीति-काव्य को ही अपनाया। गार्गी वाचकनवी हो या स्ट्रावो मुक्ताबाई हो या हला, घोषा हो या शीला-भट्टारिका, दया हो या ताज, सुभद्रा कुमारा चौहान हो या सरोजिनी नायडू, क्रिस्चिना रोजेटी हो या एला-वीलर विलकाक्स, एलिजावेथ ब्राउनिग हो या तोरूदत्त किसी कवयित्री ने कोई महाकाव्य लिखा हो ऐसा उल्लेख साहित्य के इतिहास में

१ महादेवी-विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १०२.

२ (महादेवी, साध्य-गीत की भूमिका)

नही मिलता। यानी नारी की काव्य-प्रतिभा ही गीति-काव्य परक है, यह स्पष्ट है।"[१]

महादेवी भी इसका अपवाद नही है। महादेवी में कोमल रस— वियोग शृंगार और करुणा-भाव ही प्रमुख हैं, जो गीत के अनुकूल है।

३ सस्कार और शिक्षा — 'नीरजा' को अपनी माता को भेंट करते हुए महादेवी लिखती है—"जिनके मधुर कण्ठ से निकले हुए मीरा के पद प्रभाती और लोरी के समान बचपन में मुझे जगाते सुलाते रहे है, उन्ही जननी को गीतो की एक अकिंचन भेंट।"

वैसे भी महादेवी ने वचपन में "गाना सीखा था" सितार भी जानती है और कुछ दिनो तक इसराज भी सीखा। इसके अतिरिक्त महादेवी अपने विस्तृत-व्यवस्थित अध्ययन के वल पर भारतीय समृद्ध गीति-परम्परा से परिचित रही है, उषा और मारुत के गीत तो उन को विशेष प्रिय रहे है। दीप-शिखा की भूमिका में वे लिखती हैं— माँ की भावभरी गीताञ्जलियाँ, घर में जन्म-विरह, विवाह आदि शुभ अवसरो पर गाए जाने वाली गीत कथाएँ, परिचारको में ऋतु, पर्व आदि से सम्वन्ध रखने वाले लोक-गीत, कलाविदो का ध्वनि-सगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्रष्टाओ के वेद-छन्द, माधुर्य भरे सस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षो में सुने सहज ग्राम गीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहा है।"

४ द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया—महादेवी जव साहित्य क्षेत्र में आई तव तक छायावाद के प्रमुख कवि प्रसाद पत, निराला गीति-रचना कर रहे थे। यह परम्परा महादेवीके अनुकूल थी। इन कवियो का दृष्टि-कोण वस्तुगत वहिर्मुखी न होकर भाव-गत-अन्तर्मुखी था। इनकी व्यक्तिवादी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का सहज-माध्यम गीति काव्य ही वन सका। महादेवी

१ प्रभाकर माचवे।

ने लिखा भी है "हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी अग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नही देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए ससार है। हम अपने प्रत्येक सास का इतिहास लिख रखना चाहते है अपने प्रत्येक कम्पन को अकित करने के लिए उत्सुक है और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल है। सम्भव है यह उस युग (द्विवेदी युग) की प्रतिक्रिया हो जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर ससार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।"

अब हम गीत के स्वरूप का विश्लेषण करेंगे।

महादेवी ने गीति काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—"सुख दुःख की भावावेश-मयी अवस्था विशेष का, गिने-चुने शब्दो में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।" इस परिभाषा में गीति-काव्य के मूलतत्व स्पष्ट है। प्रथम तत्व जिस पर महादेवी ने बल दिया है, वह है सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था। प्राय भावावेश मयी अवस्था वैयक्तिक सुख दुःखो को ध्वनित करने में देखी जाती है, अतएव गीति-काव्य का प्रथम तत्व है—आत्माभिव्यजन अथवा आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति। गीति काव्य आत्म-गत अथवा अन्तर्भाव व्यजक है, परार्थ-निरूपक अथवा परगत नही। भावावेशमयी अवस्था से गीति-काव्य की सशक्त अनुभूति—अनुभूति की सत्यता-नव्यता अथवा सचाई-ताजगी—की ओर सकेत भी है। इसी मे गीत की निरायास वरवस अभिव्यक्ति की ओर इगित है। गीत बनाया नही जाता, वह स्वय बन जाता है।

जैसे हर्षातिरेक अथवा दुखातिरेक में हास्य-रुदन अनिवार्य हो उठते है, फूट पडते है, उसी प्रकार गीत भी फूट पडता है। इसीलिये गीत का सम्बन्ध कल्पना अथवा बुद्धितत्व से उतना नही, जितना कि हृदय की रागात्मक भावनाओ मे है, जो सहज ही उच्छ्वसित हो उठती हैं। फिर भी गीत-रचना की सहजता अथवा भावावेशमयी

अवस्था के साथ एक प्रयत्न या सयम की भी आवश्यकता है। इसी तथ्य की ओर सकेत करती हुई महादेवी लिखती है—"कवि को सयम की परिधि में बधे हुये जिस भावातिरेक की आयश्कता होती है वह सहज प्राप्य नही, कारण हम प्राय भाव की अतिशयता में कला की सीमा लाँघ जाते है, और उसके उपरात भाव के सस्कार-मात्र में मर्म-स्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ–दु खा-तिरेक की अभिव्यक्ति, आर्त-क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें सयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत सयत हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है, जिसमें सयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नही रहने देती और उसका प्रकटीकरण नि स्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय वन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त-क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ विश्वास में छिपे हुए सयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने मे सफल हो सकेगा।§ "इस प्रकार गीति काव्य अनायास किन्तु कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह कला भी वाह्यारोपित नही होती, अन्तस्फुरित होती है—यह सयम भी भीतर से आता है।

यह समझ लेना आवश्यक है कि आत्माभिव्यक्ति का यह अर्थ नही कि कवि आत्म-चरित्रमूलक भावो की अभिव्यक्ति करे, वह समाज की अभिव्यक्ति भी अपने 'मै' के माध्यम से करता है। ऐसी अवस्था में उसकी 'मै' का 'पर' के साथ तादात्म्य हो जाता है और व्यक्ति के द्वारा समष्टि की अभिव्यक्ति होने लगती है। इसका कारण यह है कि गीतिकार को केवल व्यक्तिगत परिस्थितयाँ ही प्रभावित नही करती वह सामाजिक प्राणी है, सामाजिक परिस्थितियाँ भी उसमें आवेग लाती है, किन्तु समाज अथवा वस्तु से प्रभावित होने के पश्चात्

§ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृ० १४२

समाज अथवा वस्तु गौण हो जाती है तज्जन्य रागात्मक अनुभूति ही प्रमुख हो जाती है। गीति-काव्य की आत्म-निष्ठता अथवा आत्म-भिव्यक्ति का यही अर्थ है। निराला की निम्न पक्तिया गीतिकार की 'मैं' को, अधिकरण निष्ठता को, भली भाँति स्पष्ट कर रही है—

मैंने "मैं" शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पडी हृदय में मेरे
झट उमड वेदना आई।

—अधिवास, परिमल

महादेवी की परिभाषा में दूसरा तत्व है, "अवस्था विशेष का।" नि सन्देह गीति-काव्य के लिये एक विशेष क्षण, गीति-काव्यात्मक वृत्ति (Lyrical mood) की अपेक्षा है। इस समय तारतम्य पूर्ण, अविच्छिन्न-अखण्ड, मानसिक स्थिति होती है। एक ही भाव होता है जो उस समय के लिए पूर्ण सत्य होता है, चाहे वह चिर सत्य न रहे। अनुभूति ही लक्ष्य में रह जाती है, उस अनुभूति के कारण-साधन भी अलक्ष्य हो जाते हैं। यही अनुभूति की इकाई या अन्विति है। गीति-काव्य में इस तीव्रतम अवस्था, क्षणिक किन्तु तीव्र ज्योति का विशेष महत्व है। क्योकि इस अनुभूति-ऐक्य से ही प्रभावान्विति आती है।

महादेवी की उक्त परिभाषा में 'गिने' शब्द का भी अपना महत्व है। इसका तात्पर्य गीति-काव्य की सक्षिप्तता से है! भावावेशमयी अवस्था या अनुभूति की तीव्रतम स्थिति की भावधारा बहुत दूर तक नही चल सकती। विस्तार से भाव सघनता में शैथिल्य आ जाता है। मानव का स्वभाव चाचल्य भी उसे एक अवस्था में अधिक देर तक मग्न नही रहने देता। दूसरे मुख्य भाव के अतिरिक्त इतर भावो का

इसमें स्थान नही। अतएव सशक्त अनुभूति सदैव सक्षेप में अभिव्यक्त होती है।

'चुने' शब्दो का सम्बन्ध शब्दो के चयन से है। एक तो शब्द भावानुकूल हो——गीति-काव्य की कोमल प्रकृति के अनुकूल कोमल-कात पदावली हो, दूसरे ये शब्द सगीत के अनुरूप हो। गीति-काव्य में शब्द-चयन के सम्बन्ध में राम खेलावन पाण्डेय लिखते हैं—"भावना प्रवाहमान प्रवाह की भाति है और कविता उस प्रवाह में वाँध लगा नहर काटने के कृत्रिम प्रयास जैसा। भाषा का अत कृत्रिम वधन स्वीकार कर भावना अभिव्यक्त होती है, ऐसी अवस्था में शब्दावली और उनका सामजस्य केवल ऐसा नही होना चाहिए कि अर्थ स्पष्ट हो जाय वल्कि भावना अपनी सम्पूर्ण कल्पना-क्षमता के साथ सहसा प्रकाशित और चमत्कृत हो उठे। इस चमत्कार उत्पन्न करने में शब्दो का विशिष्ट मिश्रण ही क्षम हो सकता है और इस क्षमता के सफल-प्रयास में ही गीति-काव्य की सफलता है। कथा प्रवाह के कारण प्रवन्ध-काव्यो में निस्तेज पक्तियाँ भी खप जाती हैं। गीति-काव्य में ऐसा सम्भव नही क्योंकि न तो इस में कथा प्रवाह के कारण वेग है और न कुछ पक्तियो के निस्तेज होने के कारण उनकी पृष्ठ-भूमि पर अन्य पक्तियो के अधिक चमत्कृत होने का अवसर है।" शब्द योजना के सम्बन्ध में पत जी का यह कथन भी उल्लेखनीय है—"जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक-दूसरे पर अवलम्बित हैं, ऋणानुवध है, उसी प्रकार शब्द भी, इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग, जान लेना, इनकी पारस्परिक प्रीति मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है? प्रत्येक शब्द एक कविता है लक्ष और मील द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दो की कविता को खा-खाकर वनाती है।" §

---

§ पल्लव की भूमिका

'स्वर साधना के उपयुक्त' से सगीतात्मकता व्यजित होती है। सगीत गीति-काव्य का एक प्रमुख उपादान है। कविता में छद की आवश्यकता सगीत की महत्ता की स्वीकृति है। "गीति-काव्य तो कविता की कविता है।" यहाँ इसकी अनिवार्यता और भी सिद्ध है। किन्तु सगीत से तात्पर्य यहाँ शास्त्रीय सगीत—जिसका लक्ष्य स्वर प्रसार होता है—की रक्षा से नही, केवल सगीतात्मक होना आवश्यक है, सगीतमय होना जरूरी नही, क्योकि यह सगीत भी शब्द और अर्थ से स्वत ही ध्वनित हो उठता है। महादेवी की इस दूसरी परिभाषा मे यह स्पष्ट है—"साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में ही गेय हो सके।" इस प्रकार यह सगीत भी अन्तर्द्रवित होता है, बाह्यारोपित नही और भावनाओ के प्रसार तथा छद की गति के सतुलन-सामजस्य से उत्पन्न होता है।

इस प्रकार क्षणिक किन्तु तीव्र आत्मानुभूति की, गिने चुने शब्दो में निरायास किन्तु समन्वित एव सगीतात्मक अभिव्यक्ति को गीत कहते है।"

महादेवी एक मात्र गीत रचयिता है। 'नीहार' और 'रश्मि' की कुछ कविताएँ स्फुट भी है—जैसे 'रश्मि' की "तुम हो विधु के विम्व" पक्ति वाली वीसवी कविता। इन्होने काव्य के किसी अन्य माध्यम मे अभिव्यक्ति नही की—पत, निराला प्रसाद अन्य माध्यमो की ओर भी गए है।

महादेवी ने गीतो में सदैव आत्माभिव्यक्ति ही की है, "मैं" रूप में अभिव्यक्ति की है। ऐसी वैयक्तिक चेतना अन्य छायावादियो में पूर्ण रूपेण नही। निराला के गीत वाह्य-वर्णन प्रधान हैं, पन्त और प्रसाद में भी ऐसे गीत मिल जाते है। यही कारण है कि महादेवी में कही स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन नही हुआ। प्रसाद के 'वीती विभावरी

जाग री' जैसा गीत यहा नही मिल सकता। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि महादेवी ने व्यक्ति के माध्यम से सामूहिक भावना की अभिव्यक्ति नही की। वस्तुत छायावादियो ने स्वात्मक और परात्मक भेदो को प्राय नही माना। बौद्धिकता और हार्दिकता अथवा भाव-प्रवणता को पन्त और निराला एक मानते है। "रश्मि" की भूमिका में महादेवी लिखती है —

'मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है, कवि की कृति तो उस सजीव कविता का एक शब्द-चित्र मात्र है, जिससे उसका व्यक्तित्व और ससार के साथ उसकी एकता जानी जा सकती है।—जिस प्रकार वीणा के तारो के भिन्न-भिन्न स्वरो में एक प्रकार की एकता होती है जो उन्हें एक साथ मिलकर चलने की और अपने साम्य से सगीत की सृष्टि करने की क्षमता देती है उसी प्रकार मनुष्य के हृदयो में एकता छिपी हुई है। यदि ऐसा न होता तो विश्व का सगीत ही वेसुरा हो जाता ।

जो कुछ हो मेरा विश्वास है कि यदि हृदयवाद में हम वाह्य विश्व का अस्तित्व एक दम भूल जाये तो सम्भव है कि कुछ दिनो वाद हम अपने वाह्य रूप की अभिव्यक्ति के लिए उतने ही आकुल हो उठें जितने पहले हृदय के लिए थे।" § निस्सदेह महादेवी के गीतो में हमें हित-समन्वित हृदयवाद के ही दर्शन होते है। हम रामखेलावन पाण्डेय के इस कथन से सहमत नही है–"महादेवी के गीतो मे मानवता के प्रति जो सहृदयता है, वह उसके सामूहिक रूप अथवा जन-साधारण के लिए नही है। साधना का एकान्तिक रूपग्रहण करने वाली कविता मे मानवता के सामान्य दर्शन सम्भव नही हो सकते" वस्तुत पाण्डेय जी की "साधना का एकान्तिक स्वरूप" महादेवी के उक्त कथन के आलोक मे परखना चाहिए। वैसे इस 'साधना' के स्वरूप का स्पष्टी

रश्मि की भूमिका। §

करण पुस्कक के प्रथम लेख में हो ही चुका है। 'नीरजा' की इस कविता में पीड़ित-शोषित तथा उदास-उन्मन मानवता से कवयित्री की एकात्मकता दर्शनीय है —

मेरे हँसते अधर नहीं जग—
की आँसू-लड़ियाँ देखो।
मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो॥

इसी प्रकार "नीरजा" की १, २१, २९, ३३, ५२, ५७ आदि कविताओं के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

महादेवी में भाव-प्रवणता तथा अन्त स्फूर्ति (Spontaneity) पर्याप्त है, किन्तु पूर्ण नही। ये न तो प्राचीन कवयित्री मीरा के समान है और न आधुनिक कवियों, बच्चन, नरेन्द्र और अचल के समान। इन कवियो की अभिव्यक्ति अधिक मुखर है, महादेवी के समान, प्रतीको के माध्यम से प्रच्छन्न नही। प्रतीको के अतिरिक्त चिंतन और कल्पना भी महादेवी की अन्तर्ज्वाला को शान्त कर देते है। किन्तु यहाँ पन्त के समान शान्ति तथा आवेग हीनता भी नहीं, निराला ही उद्दामता का प्रश्न भी यहाँ नही उठता। साकेत के नवम सर्ग के गीतो की कृत्रिम अनुभूति भी यहाँ नही।

यदि पन्त के गुंजन, निराला की गीतिका तथा महादेवी की नीरजा के गीतो का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो महादेवी के गीतों की मार्मिकता सहज स्पष्ट हो जाती है। तात्पर्य यह है, कि कल्पना, चिंतन और सांकेतिक शैली के होते हुए भी इन गीतो मे अपेक्षित मार्मिकता का अभाव नही। महादेवी के अनेक ऐसे गीतो में से कुछ गीत लीजिए—

१. शलभ मैं शापमय वर हूँ,
किसी का दीप निष्ठुर हूँ। —सान्ध्य गीत

भी यह दर्शन-चिन्तन ऐसा नही जैसा कि पत के गु जन में चितन अनुभूति को दवाने लगता है । नीरजा का एक उदाहरण लिखिए—

प्राण-पिक प्रिय नाम रे कह ।
मै मिटी निस्सीम प्रिय में,
वह गया बँध लघु हृदय में।
अब विरह की रात को तू,
चिर-मिलन का प्रात रे कह ।
दुख-अतिथि का धो चरण-तल,
विश्व रसमय कर रहा जल ।
यह नहीं क्रन्दन हठीले,
सजल पावस मास रे कह ।
+ + + +
चल क्षणों का क्षणिक सचय,
कह न जीवन तू इसे ।
प्रिय का निठुर उपहास रे कह ।।

यहाँ दार्शनिकता के आग्रह के कारण अन्तिम अवस्था तक पहुँचते पहुँचते गीत विचार प्रधान हो उठा है । "मैं ऐसा नही कहता कि कवि जान-बूझकर चेतन अवस्था में ऐसा करता है, किन्तु ऐसा अचेतन रूप में हो जाता है और स्वय कवि को इसकी सूचना नही रहती, "चल क्षणो उपहास रे कह" मे दार्शनिकता का यही मोह निहित है, किन्तु एक बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि दार्शनिकता के आग्रह से प्रारम्भ कर दार्शनिकता की परिणति दिखाना, दार्शनिकता का असत्य आरोप अथवा क्रम-विकास की हीनता और उसके स्वाभाविक विकास का अभाव यहाँ नही । ऐसा नही जान पडता कि महादेवी ने बलपूर्वक दार्शनिकता का यह भार पाठको के सिर लाद दिया है ।[1]

---

[1] रामखेलावन पाण्डेय ।

यही अवस्था नीरजा के गीत नम्बर, ५, १३, १६, आदि की है जहाँ अन्तिम अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते गीत विचार प्रधान हो उठते हैं, किंतु फिर भी यहाँ सहजता परिलक्षित होती है। 'दीपशिखा' में चितन अधिक बढ गया है जो गीति-काव्य के अननुकूल है।

महादेवी के कुछ गीत सौंदर्य से जगमगा रहे हैं। यहाँ न दार्शनिकता का मोह है और न गूढ व्यंजनाएँ। महादेवी के इन गीतो की कांत कलात्मकता पंत से कही अधिक सहज है। इस दृष्टि से नीरजा के कुछ निम्न गीतांश आस्वादनीय है—

१ "मत अरुण घूँघट खोल री,
वृन्त बिन नभ में खिले जो।
अश्रु बरसाते हँसे जो,
तारको के वे सुमन।
मत चयन कर अनमोल री॥

× × × ×

चांदनी की सित सुधा भर,
बांटता इन से सुधाकर।
मत कली की प्यालियो में,
लाल मदिरा घोल री।

× × × ×

खेल सुख-दुःख से चपल थक,
सो गया जग शिशु अचानक।
जाग मचलेगा न तू,
कल खग पिकों में बोल री।

× × × ×

२ लाए कौन संदेश नए घन।
अम्बर गर्वित
हो आया नत,

चिर निस्पन्द हृदय में उसके उमड री पुलकों के सावन।
लाए कौन सदेश नए घन।

(३) मुखर पिक हौले बोल!
हठीले हौले हौले बोल!
जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे 'और'
चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे बार
समीरण मत्त उठेगा डोल।
हठीले हौले हौले बोल!

× × ×

(४) सोरभ भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अञ्जन सा दुकूल
चल अञ्चल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्जवल चितवन-विलास
रूपसि तेरा घन केश-पास

× × ×

(५) पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नही

+ × ×

नव इन्दु धनुप सा चीर
महावर अ जन ले
अलि-ुञ्जित मीलित पकज
नूपुर रुन झुन ले
फिर आई मनाने सांझ
मैं वेसुध मानी नहीं।
मै-प्रिय पहचानी नही।

यही सौन्दर्य 'सान्ध्य गीत' के "जाग जाग सुकेशिनी री" गीत में हैं। ये तो कुछ अंश ही थे, पूर्ण गीतो को पढ़ने से वास्तविक आनन्द आ सकता है।

महादेवी के गीतो में सामान्यत एक ही भाव मिलता है। इस दृष्टि से 'नीरजा के निम्न गीत आदर्श है —

१ घन बनू वर दो मुझे प्रिय।
२ क्या पूजा क्या अर्चन रे।
३. तुम्हें बांध पाती सपने में।
४. विरह का जल जात जीवन
५ इस जादू गरणी वीणा पर
६ प्रिय मैं हू एक पहेली भी
७ प्रिय सुधि भूले मैं पथ भूली
८. मत अरुण घूघट खोल री
९ मधु वेला है आज ''आदि आदि।

किन्तु कुछ गीतो में भाव-ऐक्य नही मिलता। जैसे नीरजा गीत नम्बर ७, ११ और ४८। वैसे तो नीरजा के लम्बे-लम्बे गीतो में भी भाव-ऐक्य है, जैसे गीत नम्बर १६।

महादेवी के गीत पर्याप्त सक्षिप्त है। इस सम्बन्ध में शम्भुनाथ सिंह लिखते है, "छायावादी कवियों में इस दृष्टि से महादेवी से बडा कलाकार कोई नही है।"

जहाँ तक सगीतात्मकता का प्रश्न है, महादेवी के गीतो में इनकी रक्षा पूर्णतया हुई है। हमारा तात्पर्य सगीत के शास्त्रीय पक्ष की रक्षा से नहीं, महादेवी में अन्तस्सगति है जो हृदय की रागात्मक भावनाओं मे ही ध्वनित होता है। महादेवी ने कही भी निराला के समान छन्दो के बाह्य ढाचे तैयार नहीं किए वरन् वर्ण, शब्द, वाक्य और छन्द

उनकी भावनाओ के अनुवर्त्ती है। यद्यपि उन्होने निराला के समान विविध छन्दो का प्रयोग नही किया परन्तु सीमित छन्द-रूपो की परिधि में जिस लयात्मक विविधता का परिचय दिया है वह सराहनीय है।

महादेवी ने हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल मात्रिक छन्दो का प्रयोग किया है। हृदय की भाव-लयानुसार चरणो एव पदो का विन्यास और क्रम-स्थापन हुआ है। कभी पहले और दूसरे चरण का तुकात मिलता है—

१. सजल रोमों में बिछे हैं पावडें, मधुस्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से,
क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधुर राग वाली
मै बनी मधुमास आली।

कभी दूसरे और चौथे चरण का तुकात मिलता है —

इन श्वासों को इतिहास
आंकते युग बीते,
रोमों में भर भर पुलक
लौटते पल रीते
यह ढुलक रही है याद
नयन से पानी नही
मै प्रिय पहचानी नही

—नीरजा

प्राय उक्त रूप ही महादेवी में अधिक मिलते है। इस उदाहरण में पहले-दूसरे और तीसरे चरण का तुकात देखिए—

तम में हो चल छाया का क्षय
सीमित की असीम में चिर लय
एक हार में हो शत शत जय

सजनि ! विश्व का कण कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी !
आ मेरी चिर मिलन-यामिनी।

—नीरजा।

अव एक उदाहरण लीजिए जिसमें पहले दूसरे तथा तीसरे चौथे चरणो को समतुकात रखा है —

दुर्गम पथ हो व्रज की गलियाँ,
शूलो में मधुवन की कलियाँ,
यमुना हो दृग के जल कण में,
वशी-ध्वनि उर की कम्पन में,
जो तू करुण का मगल घट ले
वन आवे गोरस वाली।
जाग ओ मुरली की मतवाली !

—नीरजा

निम्न गीत में सभी चरण सम तुकात हैं —

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सूना मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहती नित्य प्रिय का अभिनन्दन रे।
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे।

—नीरजा

महादेवी के कुछ गीतो मे गजल के काफिए-रदीफ का सा क्रम मिलता है जिस मे प्रथम चरण विषम तथा द्वितीय समतुकात होता है। यथा :—

तुम दुख वन इस पथ से आना,
शूलों में नित मृदु पाटल सा,

खिलनें देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना !

× × ×

वर देते हो तो कर दो ना
चिर आँख मिचौनी यह अपनी
जीवन में खोज तुम्हारी है, मिटना ही तुम को छू पाना !

—नीरजा

इस प्रकार महादेवी ने अनेक उर्दू छन्दो का हिन्दीकरण अद्भुत कुशलता से किया है। उपर्युक्त उदाहरणो से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि महादेवी सामान्य छन्दो का ग्रथन भी ऐसी अपूर्वता से करती है कि 'सामान्य' भी 'विशेप' बन नूतनता का आनन्द देता है। गीत में पहली पक्ति सगीत के बोल या टेक के रूप में उपस्थित की जाती है। महादेवी की यह प्रथम पक्ति अत्यन्त मोहक होती है। बार बार गुन-गुनाने के लिए हृदय बरबस उन्मुख हो जाता है। वैसे सगीत के नियमानुसार इसे अतरा की कुछ पक्तियो के बाद दुहराया जाना चाहिए, किन्तु महादेवी में ऐसे नियम के वशीभूत होकर नही स्वत ही दुहराने को जी चाहता है। नीरजा के कुछ गीतो की प्रथम पक्तियो के उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

१. मुखर पिक हौले बोल !

२. पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नही।

३. प्राण पिक प्रिय-नाम रे कह।

४. अलि वरदान मेरे नयन

५ मत अरुण घूंघट खोल री !

६. झरते नित लोचन मेरे हो।

७. यह पतझर मधुवन भी हो।

८. आसू का मोल न लूगी मै।

९. मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।

१०. बीन भी हू, मैं तुम्हारी रागिनी भी हू।

११. प्रिय सुधि भूले, मै पथ भूली।

१२. तुम सो जाओ मैं गाऊं

१३. पूछता क्यों शेष कितनी रात—दीपशिखा

१४. अलि मैं कण-कण को जान चली—"

१५ जब यह दीप थके तब आना—"

यह प्रथम पंक्ति गीत के सार स्वरूप होती है। और शेष पंक्तियाँ जैसे इसी को पुष्ट करने के लिए आती हैं, और यही टेक की सार्थकता और भाव-ऐक्य है। इस प्रथम पंक्ति में अनुभूति तीव्रतम होती है।

भक्ति-कालीन पदो में प्राय सभी पंक्तियाँ सम-मात्रिक तथा सम-तुकांत होती हैं, किन्तु अधिकांशत छायावादी गीत, शास्त्रीय दृष्टि से, विषम मात्रिक छन्द के ही अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि अन्तरा के विधान में छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द मार्ग का अवलम्बन किया है। प्रथम पंक्ति में जो छन्द व्यवहृत होता है, अन्तरा मे उन्होंने उसे कभी-कभी बदल भी दिया है। स्वर में उत्कृष्टता और विरोध लाकर प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ऐसा किया जाता है। उदाहरण के लिए यह गीत द्रष्टव्य है—

घन बनूं, वर दो मुझे प्रिय !
जलधि-मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में।
सजल श्यामल मन्थर मूक सा,

तरल अश्रु विनिर्मित गात ले।
नित घिरू झर झर मिटू प्रिय !

"इसमें पहली और अन्तिम पक्तियो का छन्द एक है, उनमे १४-१४ मात्राएँ है। किन्तु अन्तरा की चारो पक्तियो में १६-१६ मात्राएँ है और उनमे समान अन्त्यानुप्रास भी नही है। पहली और अन्तिम पक्ति की गति-लय से अन्तरा की गति-लय भी भिन्न है। इससे सगीत के विधान में तो वाधा अवश्य पडती है किन्तु भावना का उतार-चढाव छन्द के परिवर्तन से अवश्य व्यक्त हो जाता है।"[१]

जैसे उक्त उदाहरण में टेक परवर्ती चरणो से छोटी है, वही कहीं भावानुकूल वडी भी है—

तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?
चित्रित तू मैं हू रेखा क्रम,
मधुर-राग तू मैं स्वर-सगम।

(नीरजा)

कुछ गीतो में महादेवी ने परम्परा-मुक्त एकांत नूतन सगीत-सुरुचि का परिचय दिया है। नीरजा के कुछ गीतो की निम्न पक्तियाँ उदाहरणीय है—

१. प्रिय गया है लौट रात !
सजल धवल अलस चरण,
मूक मदिर मधुर करुण।
चादनी है अश्रुस्नात,
प्रिय गया है लौट रात।

२. ओ विभावरी !
चादनी का अंगराग,
माग में सजा पराग।

रश्मि तार वाद्य मृदुल,
चिकुर-भार री।
ओ विभावरी !

३. दिशी का चचल,
परिमल—अचल,
छिन्नहार से बिखर पड़े सखि,
जुगनू के लघु हीरक के कण !
लाये कौन सदेश नया घन !

इसी प्रकार नीरजा का 'आ मेरी चिर मिलन यामिनी' गीत भी अति सुन्दर बन पड़ा है।

महादेवी शब्दावली और लय में स्वाभाविक सौन्दर्य-सूचक लोक-गीतो से भी प्रभावित हैं। महादेवी 'दीप-शिखा' की भूमिका में लिखती है—"पिछले अनेक वर्षों में सुने सहज ग्राम गीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहता है। मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं।" नीरजा के कुछ उदाहरण लीजिए जिसमें लोक गीतो की लय को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया है—

१. मुखर पिक हौले बोल,
हठीले हौले हौले बोल।

२. बताता जा रे अभिमानी।

३ पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं।

४. प्राण पिक प्रिय नाम के कह !

५. लाए कौन सदेश नया घन !

६. कहा के आए बादल काले—(दीप शिखा)

७. रे पपीहे पी कहाँ—सांध्य-गीत

८. मैं यह न पथ जानती री—दीप-शिखा

इन गीतो की शब्दावली-हौले, भोर, रैन आदि—मे भी ग्राम्य सस्कार है जिससे माधुर्य वढ गया है।

महादेवी लघु-सूक्ष्म ध्वनियो का सगुम्फन-सगठन करनेमें सिद्धहस्त है। ध्वनियो का लयपूर्ण सगठन सगीत को मार्मिक बना देता है। वर्णों शब्दो की योजना वाक्यो में, और वाक्य की योजना छन्द में इस रुप में हो कि एक बृहत्तर लयात्मक साम जस्य की प्रतीति हो। इस दृष्टि से महादेवी के गीत आदर्श हैं। नीरजा के गीत नम्बर ३,६ आदि उदाहरण स्वरुप देखे जा सकते हैं।

महादेवी की भाषा और भाव में व्यवधान नही। शब्दो का चयन आँतरिक सगीत के अनुकूल है। महादेवी के सयत आवेगो के अनुरूप ही सुचयनित शब्दो का नादात्मक सौन्दर्य है जिसमें मन्द्र-मन्थर प्रवाह है। भावना और भाषा का स्वाभाविक सतुलन है। महादेवी भाषा में नाद-झकार की रक्षार्थ वर्ण-मैत्री, शब्द मैत्री, पद मैत्री कोमला-उपनागरिका वृत्तियो आदि का ध्यान रखती है। निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?
पिक की मधुमय वंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनि भोली।
अरुण सजल पाटल बरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली।
मृदुल अंक धर दर्पण सा सर,
आज रही निशि दृग-इन्दीवर।
आज नयन आते क्यों भर-भर ! —(नीरजा)

इसमे उपर्युक्त अधिकांश विशेषताएँ मिलती है। निम्न उदाहरण भी आस्वादनीय है—

सौरभ भीना झीला गीला
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल,
चल अंचल से झर-झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल,
दीपक से देता बार-बार
तेरा उज्जवल चितवन विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

दोनो उदाहरणो में स्वर की सूक्ष्म-तरल योजना है, गति और प्रवाह भी है, किन्तु सब मर्यादित है, नियन्त्रित है। चाहे 'आंसू भर-भर आएं' और जुगनू के फूल 'झर-झर' झरे फिर भी स्वर-साधना अविच्छिन्न है।

ऊपर कोमला तथा उपनागरिका वृत्तियो का उल्लेख हो ही चुका है, महादेवी मे परुषा वृत्ति नही मिलती—'ट' वर्गीय या परुष-कठोर एव सयुक्त वर्णो का प्राय अभाव है। महादेवी ने जहाँ कही उत्साह व्यजक कविताए लिखी हैं वहाँ भी ओज गुण के वाचक वर्ण नही प्रयुक्त हुए, किन्तु अर्थ या भाव मे विशेष दीप्ति दृष्टि-गत होती है। जैसे नीरजा और साध्य गीत की निम्न कविताएँ—

१. जाग बेसुध जाग

२ चिर सजग आँखें उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना।
जाग तुझको दूर जाना।

महादेवी मे 'त' 'प' तथा 'च' वर्ग के वर्णो का प्रयोग अधिक मिलता है, और ये सब वर्ण कोमलता-व्यजक होते हैं। अनुस्वार युक्त स्वर भी अपनी स्वाभाविक कोमलता लिए हुए आए है। सत्य तो यह

है कि महादेवी की मजुल-मसृण पदावली के लिए यह कहा जा सकता है —

"Repeat my verses again for I always love to hear poetry twice, first time for sound and the later time for sense"

गीति-काव्य की सभी विशेषताओ को प्रभाव को अन्वित करने मे सहायक होना चाहिए। प्रभान्विति ही रसात्मकता का कारण होती है। छायावादी गीतो मे अन्विति बिरल है, क्योकि कल्पना-क्रीडा इस मे बाधक हुई है। महादेवी के गीतो मे अन्विति पर्याप्त है, किन्तु पूर्ण नही – ऐसी नही जैसी मीरा के लघु-गीतो मे है। मीरा के गीत जैसे शुद्ध राग के द्वारा प्रेषणीय हुए है वैसे महादेवी के नही। महादेवी के गीतो की किंचित अस्पष्टता भी इससे बाधक सिद्ध हुई है, क्योकि प्रभविष्णुता का सरलता-स्पष्टता से भी सम्बन्ध है। महादेवी के गीत 'प्रतीक-गीति" के अन्तर्गत आते है, क्योकि प्राय प्रतीको के माध्यम से आत्म-व्यजना हुई है। यह सांकेतिक शैली भी गीति काव्य के अधिक अनुकूल नही फिर भी महादेवी में इतनी भाव-प्रवणता, अन्त स्फूर्ति, सक्षिप्तता तथा तदानुकूल सगीतात्मकता है कि छायावादियो में सर्वाधक प्रभावान्विति इनके गीतो मे है।

महादेवी के गीति काव्य की अनेक विद्वानो ने भूरि-भूरि पशसा की है। कुछ सम्मतियां इस प्रकार है—

१ आचार्य शुक्ल—"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी किमी को नही। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्राजल प्रवाह और कही मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भगी। जगह-जगह ऐसी ढला हुई और अनूठी व्यञ्जना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।

The Ruidments of criticism

२. डा० नगेन्द्र—"प्रचलित लोक गीतो की वन्य गतिलय मे अमूल्य काव्य सामग्री भरकर महादेवी जी ने खडी बोली की कविता मे गीत के माध्यम को अमर कर दिया है।"

३ शान्ति प्रिय द्विवेदी—पत ने जिस खडी बोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। ताज-महल के भीतर उन्होने दीपक जला दिया। · · गीतिकाव्य को महादेवी से विशेष गौरव मिला है।

४ विश्वभर मानव—नीरजा की सृष्टि के साथ गीत-काव्य की परम्परा महादेवी में जैसे अपनी पूर्णता को पहुँच गई है। उनका मानस भी तरगायित है, पर तट को नही डुबाता, दर्शन की वे भी पण्डिता है डुबाना मन के विकारो पर ही दृष्टि गडाये रखना उनका काम नही, भाव-गाम्भीर्य उनमें भी है, पर शुष्कता बचाकर, भारतीय सगीत से उनका भी परिचय है, पर कलाबाजियो को नमस्कार करके, अलकारो का प्रयोग वे भी करती है, पर अनायास ही अकृत्रिमता से।"

५ डा० शिव मगलसिंह सुमन—हिन्दी साहित्य में गीति-काव्य के वर्तमान स्वरूप के सवारने का श्रेय श्री मती महादेवी जी वर्मा को ही है।'

६ प्रो० विजयेन्द्र स्नातक—नीरजा' में गीतो के साथ लोक गीतो का और उर्दू शैली से रूपातर करके नवीन गीतो का प्रयोग दृष्टि-गत होता है। गीत-काव्य की नूतन शैली को दृष्टि में रखकर यदि नीरजा के छद लय, सगीत, ध्वनि, ताल आदि पर विचार किया जाय तो निस्सदेह वह छायावादी युग की इस दिशा में अन्यतम श्रेष्ठ रचना है। 'नीरजा' में गीति-काव्य का पूर्ण विकास है, इसमें तो सन्देह का अवकाश है ही नही।"

७ डा० देवराज—छायावादी युग की गीत-सृष्टि में महादेवी सहज ही अद्वितीय है। 'नीरजा', 'साध्य गीत', 'दीप-शिखा आदि में कम-से कम पचास ऐसे गीत है जो अपने कलात्मक सौष्ठव के कारण हमारे साहित्य की अमर निधि बने रहेंगे। गुण और परिमाण दोनो दृष्टियो

स्निग्ध खण्ड रूप में साध्य की विस्मय भरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है ।"[1]

यह सामजस्य भारतीय विचारधारा के अनुकूल ही है । इन्ही की दूसरी उक्ति में यह तथ्य और भी स्पष्ट है—"कला के पारस का स्पर्श पा लेने वाले का कलाकार के अतिरिक्त कोई नाम नही, साधक के अतिरिक्त कोई वर्ग नही, सत्य के अतिरिक्त कोई पूँजी नही, भाव-सौंदर्य के अतिरिक्त कोई व्यापार नही और कल्याण के अतिरिक्त कोई लाभ नही ।[2] इस स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण ही महादेवी की कला का मूल्य अक्षुण्ण है । उनके कलात्मक स्तर मे कभी कमी नही आई ।

छायावादी कवि द्विवेदी-युगीन कवियो से साहित्यिक अनुशीलन में बहुत आगे बढे । परम्परागत नियम शृ खलाओ में जकडी कला अपनी मुक्ति के लिए अकुला रही थी । भाषा परिष्कृत-परिमार्जित तो अवश्य थी किन्तु छायावादियो के सूक्ष्म सौंदर्यबोध और कोमल भावनाओ के लिए उसमें साकेतिकता एव मजुलता-ममणता का अभाव था । छन्द विषयानुरूप होते हुए भी नवीनता-शून्य थे । अतएव छायावाद ने परम्परागत कला को मुक्ति दी । 'नव गति नव लय ताल छन्द नव' का आग्रह बढा—एक नूतन कला का सृजन हुआ जो छायावादियो के भावात्मक दृष्टिकोण तथा सूक्ष्म सौदर्य-बोध के अनुकूल थी । महादेवी भी इसका अपवाद नही है । महादेवी में छायावादी कला की सभी विशेषताएँ—ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीकविधान, उपचार वक्रता आदि मिलती है । किन्त निराला के समान सभी छायावादियो की 'मै' (स्वतन्त्र) शैली है । ऐसा होना स्वाभाविक है क्योकि सभी कवियो की अपनी वृत्ति है । महादेवी की 'मै' ने उनके काव्य को अन्य कवियो से अधिक मार्मिक बना दिया है ।

---

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृ० १ ।

२ वही ।

कवि के पास कला-सृजन के लिए जिस प्रतिभा, व्युत्पत्ति (अध्ययन) और अभ्यास की आवश्यकता होती है, वह महादेवी के पास पर्याप्त है। महादेवी की प्रतिभा का प्रमाण उनकी प्रथम कृति नीहार को ही देख कर मिल जाता है। उनका कलात्मक स्तर प्रथम कृति मे ही उच्च है। महादेवी ने एम. ए. तक शिक्षा पाई है, विधिवत् अध्ययन की दृष्टि से वे अन्य छायावादी कवियो से आगे है। अध्ययन अध्यापन उनका मुख्य कार्य रहा है इसलिए उनकी कला विशेष परिष्कृत है।

अपनी अभिव्यक्ति के सौदर्य के लिए कलाकार जिन साधनो—भाषा, शब्द शक्तियाँ, अलकार छद आदि—का प्रयोग करता है वह सब कला के अन्तर्गत आते है।

अभिव्यक्ति का सर्वप्रमुख अ ग भाषा है जिसके विना अभिव्यक्ति सम्भव नही। जिस कवि को भाषा पर अधिकार होता है वह अपनी अभिव्यक्ति-कुशलता में पूर्ण सफल होता है।

महादेवी प्रारम्भ से ही सस्कृत साहित्य की अध्येता रही है इसलिए इनकी भाषा तत्सम बहुला है। किन्तु उन्होने सस्कृत शब्दो से भाषा को बोझिल नही होने दिया। हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ही लम्बे समास वाले शब्दो तथा कोमल विषय के अनकूल कठोर पदो का बहिष्कार किया। इस दृष्टि से महादेवी ने सुचयन वृत्ति का परिचय दिया है। महादेवी ने अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नही किया जैसा कि गुप्त, निराला, पत और प्रसाद ने किया है। इसलिए कोष की कम आवश्यकता पडती है। निराला ने प्राय नूतनता तथा चमत्कार के लिए पत ने सौंदर्य के हेतु गुप्त ने तुक के लिए, प्रसाद ने आवश्यकतावश अप्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है किन्तु महादेवी ऐसे शब्दो से बच रही है। निम्न उदाहरण देखिए जहाँ सस्कृत शब्दो का प्रयोग होते हुए भी विषयानुरूप कितनी सरल-प्रसन्न तथा कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग हुआ है—

'सजल धवल अलस चरण
मूक मदिर मधुर करुण
चादनी है अश्रु-स्नात !

—नीरजा

इनकी भाषा में कैसा ध्वनि-लालित्य एव श्रुति कोमलता है यह उक्त उदाहरण से स्पष्ट है। द्विवेदी-युगीन भाषा से इस भाषा में कितना परिवर्तन-परिवर्द्धन हो चुका है।

वर्णसगीत से भाषा की लय अर्थवती होती है क्योकि वर्ण से शब्द और शब्द से वाक्य की लय समृद्ध होती है। उक्त उदाहरण मे 'ल' और 'म' वर्णों से इसी वर्णसगीत की सृष्टि हुई है। यह भी ध्यान रहे कि यहाँ भाषा को अनुप्रास के रजत पाश में बांधने का प्रयास नही किया गया, अनायास ही अनुप्रास ने वर्णसगीत मे योग दिया है। शब्दो के दुहरे प्रयोग से भाषा की प्रभावान्विती कैसे बढ जाती है उस के लिए निम्न पक्तियाँ अवतरणीय है—

पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?'

—नीरजा

अयवा—

रूपसि तेरा घन केश पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश पाश !

—नीरजा

उनकी ध्वनियो का सतुलित सगठन भी अद्भुत है—

(१) गाती कमल के कक्ष में
मधुगीत मतवाली अलिनि

(२) अलि ! मिलन गीत बने मनोरम
नूपुरों की मदिर ध्वनि ।

—नीरजा

भावनाओ के वेगानुरूप अनेक स्थानो पर वीप्सा का अनायास प्रयोग हुआ है। यह शैली का विशेष अग ही बन गया है। वर्ण तथा शब्द की कोमल मैत्री का महादेवी अवश्य विचार रखती हैं। पर कही कही वे चूक भी जाती है और ध्वनियो की शिथिलता दिखाई देती है—

शिथिल मधुपवन, गिन गिन मधु-कण
हर सिंगार झरते हैं झर झर

नीरजा के —नीरजा

'लय गीत मोदरगति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर,

गीत में शब्द भी नृत्य- निरत दिखाई पडते हैं। यथा इस ध्वनि चित्र में ध्वनिया ही अर्थ को स्पष्ट कर रही हैं—

जड कण कण के प्याले झलमल
छलकी जीवन मदिरा छल छल
पीती यक झुक झुक झूम झूम
तू घूंट घूंट फेनिल शीकर ।
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

फिर भी ध्वनि चित्र जैसे पत और निराला मे मिलते हैं वैसे महादेवी में नही। उपरोक्त उदाहरण में शीकर के स्थान पर 'सीकर' ध्वनि की दृष्टि से अधिक उपयुक्त हो सकता था।

महादेवी में कहीं कहीं समासयुक्त पदावली भी मिलती है पर प्रवाह में बाधा नहीं आती। यथा—

मैं चिर चचल !
मुझ से है तट रेखा अविचल !
तट पर रूपों का कोलाहल
रस-रग-सुमन-तृण-कण-पल्लव

—दी शिखा

माधुर्य गुण के लिए भाषा का समासरहित अथवा लघु समासो से युक्त होना आवश्यक है। महादेवी में भी ऐसा ही है।

महादेवी ने अनेक सस्कृत शब्दो को तद्भव रूप में प्रयोग किया है यथा—

स्वप्न—सपना। रिक्त—रीता। श्वास—साँस। सौभाग्य—सोहाग। प्रतिच्छाया—परछाईं आदि। ये तद्भव शब्द उचित मात्रा में आए है।

विद्यापति ने कहा था 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा'। महादेवी में भी आवश्यकतानुसार देशज शब्द मिल जाते है। ऐसा प्राय उन गीतो में अधिक हुआ है जहाँ ग्राम्य गीत की लय का प्रभाव है। वन्य प्रकृति (Folk element) लाने में ये शब्द सहायक सिद्ध हुए है। कुछ शब्द देखिए—बैन, नैन, हौले, मनुहार, अलबेला, भोर, साझ आदि। इनसे गीतोचित कोमलता-मसृणता की रक्षा में सहायता मिली है। यह ध्यान रहे कि इन शब्दो का प्रयोग केवल कविता में ही होता है।

महादेवी मे कही कही प्रचलित उर्दू के शब्द भी मिल जाते है यथा—अरमान, साकी, दीवानी, राह, दाग, नादान, प्याला, प्याली, खुमार, बेहोशी, तूफान आदि। यहाँ कुछ उर्दू शब्दो को तद्भव बना दिया गया है साकी, दाग, खुमार, बिरानी आदि ऐसे ही शब्द है।

कुछ स्थानों पर सस्कृत शब्दो के मध्य में उर्दू का प्रयोग खटकने लगता है। एक उदाहरण देखिए—

छोड कर लघुवीणा के तार
शून्य में लय हो जाता राग।
विश्व छा लेती छोटी आह,
प्राण का बदीवाना त्याग।

कुछ शब्दो के प्रति महादेवी को अत्यधिक-अनुचित मोह है। जैसे—मूक, चिर, मृमग, स्वर्ण, नव, चल आदि ऐसे ही शब्द है। इन शब्दो की आवृत्ति से कविता में एक रसता आ जाती है।

मात्राओ की पूर्ति तथा तुक के आग्रह ने कुछ शब्दो को विकृत कर दिया है। यथा अधार, ज्योती, कर्णाधार, अन्धाकार आदि। नीरजा की दूसरी कविता की ये पक्तियाँ देखिए—

म रि की सुमधुर नूपुरध्वनि;
अलि गुजित पद्मो की किंकणि
भर दगति मे अलस तरगिणि

रेखाकित शब्द तुक के आग्रह के कारण विकृत हो गए है। कहीं-कही इनकी पक्तिया व्याकरण-व्यवस्थित नही। यथा—

१ पथ देख बिता दी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं

—नीरजा

२. मैं आज चुरा आई चातक

—सांध्यगीत

कही-कही पर 'यह' शब्द का प्रयोग बहुवचन में हुआ है।

मुहावरो के प्रयोग से भाषा मे सजीवना आती है। छायावादियों में जातीय जीवन का सम्पर्क कम होने से लोकोक्तियां-मुहावरो का प्रयोग

अत्यल्प है। महादेवी में भी ऐसा हो है फिर भी कहीं कहीं स्वाभाविक रूप से इनका प्रयोग हुआ है। यथा—

सीमा हीं लघुता का बंधन
है अनादि तू मत घड़ियां गिन

—नीरजा

कहीं मुहावरों को परिवर्तित करके प्रयोग किया है जैसे—

तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर धर

—नीरजा

अथवा

रीते कर ले कोष
नहीं कल सोना होगा धूल।

कहीं कहीं अंग्रेजी मुहावरों की छाया भी मिलती है—'फिर मिट जाते ज्यों विफल धूम' में 'To end in smoke' का प्रभाव है।

कवि के पास 'अरथ-आखर' का ही बल होता है। वह प्रसंगानुसार ऐसे सार्थक शब्दों का प्रयोग करता है कि भाषा भाव को तीव्र बना देती है। यथा—

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से,
अंकित कर इसका मृदुल भाल।
दुलरा देना बहला देना
यह तेरा शिशु जग है उदास
रूपसि तेरा घन केशपाश।

कवि माता के वात्सल्य को उद्दीप्त करने के लिए अनुरोधात्मक

अनुनय-विनय करता है। 'ना' के प्रयोग से कवि की उक्ति में बाल-सुलभ आग्रह का माधुर्य मिलता है।

पर्यायवाची शब्दों में भी कवि प्रसगानुरूप चुनाव किया करता है। इससे अर्थ में सगति से उत्कर्ष बढ जाता है। नीरजा के ये उदाहरण देखिए —

(१) चाँदनी की सित सुधा भर
बाटता इनसे सुधाकर
(२) प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में।
(३) समीरण मत्त उठेगा डोल।

सुधाकर ही सुधा-वितरण कर सकता है। जगत (जो गतिशील है) में ही जागृति का स्पन्दन हो सकता है और समीरण (सम+ ईरण) से ही मतवाले नायक का आभास मिल सकता है।

महादेवी के आराध्य निराकार है किन्तु फिर भी उन्होंने अपनी भावनाओं के अनुकूल उन्हें ऐसे विभिन्न नामों से पुकारा है कि उनके स्वरूप एव गुणों का बोध हो जाता है। इससे भाषा का अर्थ-सौष्ठव तथा प्रभविष्णुता बढ जाती है। यदि इधर 'मतवाली' प्रिया हो तो उधर भी 'अलबेले' प्रियतम की आवश्यकता है। नीरजा की २५ वीं कविता में भाषा की विशेषता दर्शनीय है जहाँ 'चिर नूतन' 'सुन्दर' 'छाया'तन' 'चिर चचल' सम्बोधनों से प्रियतम का स्वरूप बोध होता है—

(१) तुमको क्या देखूँ चिर नूतन
(२) तुम को पहचानू क्या सुन्दर
(३) तुमको क्या बाधू छायातन
(४) तुमको क्या रोकू चिर चंचल

क्रियाओं के अनुकूल ही नामों का प्रयोग हुआ है। 'सान्ध्यगीत' की 'जाग जाग सुकेशिनीरी' कविता में रात्रि को जो विशेषण दिए गए हैं

वे अर्थपूर्ण तथा स्वरूप-विधायक हैं।' 'सुकेशिनी' 'वर वेषिनी,' 'स्वप्न निमेषिनी' 'विराग निवेशिनी' तथा 'परदेशिनी' आदि विशेषण प्रसगानुकूल है। यही सौन्दर्य 'साध्यगीत की 'अी अरुण वासना कविता में है जहाँ उषा को 'अरुणवसना,' मुकुल-दशना, 'मधुप-रशना' आदि चित्रात्मक एव क्रिया-बोधक विशेषण दिए गए हैं।

'नीरजा की 'प्रियगया है लौट रात' कविता मे सारी बात विशेषणो में कह दी गई है। महादेवी सज्ञाओ के साथ विशेषणो के प्रयोग में कुशल है। इस से विशेष सौंदर्य आ जाता है। यथा 'शीतल चुम्बन' 'हिम अधर' भीगे अधर' 'दीवानी चोट 'सोने के सपने', 'करुण अभाव' आदि साभिप्राय विशेषणों में दीर्घ अर्थ को एक एक शब्द में केन्द्रित कर दिया गया है। कहीं-कहीं विशेपणो में विरोध का चमत्कार मिलता है जैसे 'शापमय वर' 'मधुर पीर' आदि।

'कल्पना प्रवणता' छायावादियो के लिए एक शक्ति सिद्ध हुई है। इसके द्वारा वे अपनी आतिरिक सवेदनाओ की भली भाति मूर्त कर कविता को नूतन वेश-विन्यास से सजा-सवार सके है। महादेवी की नूतन मोहिनी कल्पनाओ के आस्वादनार्थ ये उदाहरण अवतरणीय हैं—

प्रिय तेरे उर में जग जावे
प्रतिध्वनि जव मेरे पी पी की
उस को जग समझे वादल में
विद्युत का वन वन मिट जाना !

—नीरजा

यहाँ वादल के हृदय की चमक, जिसे प्रेम के रहस्यो से अनभिज्ञ ससार विजली की कौंध समझता है, वस्तुत प्रेमी पपीहे की आराध्य वादल के हृदय में उत्पन्न की गई तडपन है। यह नूतन कल्पना प्रशमनीय है।

चौकी निद्रित,
रजनी अलसित,
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत के कंकण !
लाए कौन संदेश नये घन !

—नीरजा

रात्रि के सघन अन्धकार में विद्युत की कौंध अकस्मात रात की नींद में चौंक उठने से अद्भुत साम्य रखती है। साथ ही विद्युत की चमक को स्वर्ण कंकण से उपमित करने में चित्रात्मकता की पराकाष्ठा है। 'श्यामल पुलिकित कम्पित विशेषण न होते तो चित्र पूरा न हो सकता। 'कम्पित' से बिजली की कौंध का रूप खड़ा होता है। 'पुलकित' से कम्प का कारण विदित होता है और 'श्यामल' तथा 'रजनी' में वर्ण-साम्य है।

नीरजा की कविता १६ भी चित्रों की माला ही है। इन चित्रों में ध्वनि तथा रंगों की योजना भी सुन्दर है। चित्रों में वर्ण योजना की दृष्टि से नीरजा की निम्न पंक्तियाँ भी विशेष सुन्दर हैं—

स्वर्ग-कुमकुम में बसा कर
है रंगी नव मेघ चूनर
बिछल मत धुल जाएगी
इन लहरियों में लील री।
चांदनी की सित सुधा भर
बांटता इनसे सुधाकर
मत कली की प्यालियों में
लाल मदिरा घोल री।
मत अरुणा घूंघट खोल री।

चित्रात्मकता, महादेवी की प्रतिभा की सामान्य विशेषता है।

इनमें भी ये ध्वनि, रग और गध का विचार रखती है किन्तु उतना नहीं जितना पत जी। वे इसमें अधिक सफल हुए हैं। वस्तुत रुचि भेद के कारण इनकी चित्राकन कला में भी अन्तर है। एक तो पत के रगो जैसी चटक इन में नही—महादेवी के रगो में अपेक्षाकृत अधिक गभीरता है ये रँग गहरे-भास्वर हैं। दूसरे पत के चित्रो की रेखाए अधिक व्यक्त-स्पष्ट अथवा पैनी होती हैं। महादेवी के चित्रो में मृदुलता-तरलता ही अधिक है। ऐसा इस लिए होता है कि पत जडिया हैं, वह मीना कारी अधिक करते है किन्तु महादेवी में रगो की समग्रता का सौन्दर्य रहता है। वे मानो इन्द्रधनुषी तूलिका को चाँदनी के सार में डुवो कर चित्र अ कित करती है, कमल दल पर किरण-अकित चित्र ही खैंच सकती है—उनके चित्रो में एक रग मिश्रित तरलता ही मिल सकती है। वस्तुत महादेवी मे चित्रमयता भी गीतो के अनुकूल है। गीतो के अनुकुल ही इन मे तारल्य है। पत की अधिक बारीकी उनके मुक्तको के अनुकूल है और यह गीति काव्य के उपयुक्त नही। इसीलिए पत के सश्लिष्ट चित्र अधिक है। महादेवी पूर्ण चित्र कम अ कति कर पाती है क्यो कि ये पल-पल परिवर्तित होते जाते है। यथा साध्यगीत की यह गत्यात्मक चित्रमाला देखिए—

राग भीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रगीले !
लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसको नीड की फूट निकली बन मधुर रव।
झूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले।

... ...

आज इन तद्रिल पलो में।
उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुन्तलों म।
सजनि नीलम रज भरे रग चूनरी के अरुण पीले।
राग भीनी तू सजनि ... .. ।

रेख सी लघु तिमिर लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमा हीन गहरी !
गीत तेरे पार जाते
बादलों की मृदु तरीले।
राग भीनी !
कौन छायालोक की स्मृति,
कर रही रगीन प्रिय के द्रुत पदों की अ क-सर्सृा
सिहरती पलकें किए
देतीं विहसने अधर गीले।
राग भीनी

सध्या के इस झुटमुटे चित्र में महादेवी की चित्रकला की सभी विशेपताए मिल सकती है। सन्ध्या के रगीले अरुण पीले, अमित, सुनहले गुलावी विशेपणो में वर्ण योजना भी दर्शनीय है। यहाँ चित्रो के सकेत हैं। महादेवी का एक उत्कृष्ट मश्लिष्ट चित्र भी देखने योग्य है—

'पिक की मधु मय वशी वोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल वरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली,
मृदुल ग्रक धर दर्पण सा सर;
आज रही निशि दृग इन्दीवर।

यहाँ व्यापक वातावरण को, उन्नत चयन-वृत्ति के वल पर, छोटे फलक पर चित्रित किया गया है। इस दृष्टि से इस चित्र की कला महान है।

महादेवी में कही कही एक शब्द चित्र (One word pictures) मिलते हैं। अपनी व्यापक कल्पना का समाहार कर ये चित्र उपस्थित किए जाते हैं। जैसे उपा को 'अरूण वसना' कहना। सांध्यगीत में

तारो को 'गगन के चार दाग' तथा दीपशिखा में 'बिखरे सित अक्षर' और 'मूक गगन के अश्रु' कहा है। इसी प्रकार रजनी को 'नीलम की निस्सीमपटी' घन को 'सिन्धु का उच्छ्वास' तथा 'तडित को 'तम का विकल मन' (दीपशिखा) कहा है। इन विशेषणो में कलित कल्पना तथा अनुभूति का सुसयोग हुआ है।

छायावादियो की शैली साकेतिक है। इसलिए लक्षण-व्यजना का इनमें वडा प्रसार मिलता है। सूक्ष्म-आभ्यन्तर भावो की अभिव्यक्ति के लिए अभिधात्मक भाषा से कार्य नही चल सकता लक्षणा-व्यजना के द्वारा, अभिव्यक्ति की भगिमा द्वारा ही सूक्ष्म भावो की व्यञ्जना सम्भव हो सकती है।

भावनाओ को मूर्त रूप देने के लिए लक्षणा शक्ति से कार्य चलता है। मुख्यार्थ के असगत होने पर रूढि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा, मुख्यार्थ से सम्वन्धित अन्यार्थ का ज्ञान कराया जाय, उसे लक्षणा कहते है। महादेवी के गीतो में झझा के 'उन्मादो' में बेहोशी घुलती है, निर्घोप घटाओ में छिप कर चपला की तडपन सोती है तथा आँखो के आँसू उजले होते है। महादेवी में इस लक्षणा का अनेक रूपो में प्रयोग हुआ है। उनमें से हम कुछ रूप लेंगे। पहले क्रिया के रूप में लक्षणा देखिए। नीरजा की एक पक्ति है—

'झरते नित लोचन मेरे हों'

—नीरजा

लोचन नहीं झरते आसू झरा करते हैं। किंतु यहां आंसुओ की अधिकता का प्रभाव डालने के लिए यह कह दिया गया आंखें झर रही है मानो कि आंखे आखें नही रही अश्रुमय हो गई है। साथ ही आँखो से आँसू वहते है किन्तु अधिकता व्यक्त करने के हेतु लक्षण का आश्रय ले कह दिया गया 'झरने' है।

विशेष्य अथवा सज्ञा के रूप में लक्षणा निम्न पक्ति में देखिए—

मृदु रजत-रश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पखो में

—रश्मि

रजत की रश्मियाँ नही होती, अतएव लक्षणा द्वारा अर्थ हुआ चाँदी के समान श्वेत चमकीली रश्मियाँ।

वाक्य के रूप में लक्षणा—

अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतो से नहलाता सागर

—नीरजा

सागर में वडवाग्नि के रूप में जो ज्वाला है, उसे वह अपने चचल लहरो की ध्वनि (मानो गीत) से नहलाता है—ठडा करता है। लक्षणा से चित्र भी उपस्थित हुआ और अर्थगाम्भीर्य भी आया।

साम्य के रूप में—

कनक से दिन मोती सी रात

लक्षणा से इसका अर्थ होगा सोने के समान उज्ज्वल तथा ली सनहरी किरणो वाला दिन तथा मोती के समान स्वच्छ एव चमकी चन्द्रिका स्नात रात—यहाँ उज्ज्वलता तथा स्वच्छता के साम्य पर ही लक्षणा आधारित है।

आधार के लिये आधेय के रूप में—

कलियों की घन जाली में
छिपती देखूँ लतिकायें
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ

—रश्मि

अतिम पक्ति में नारी आधार के लिए लज्जा आधेय ही उक्त है। अथवा—

जागो बेसुध रात नहीं यह।
तुम्हें जगाने आई पीडा,
स्वप्नों का परिहास नहीं यह।

—नीरजा

यहां भी पीडित नारी (दुखी मानवता) आधार के लिए पीडा आधेय ही कथित है।

कार्य कारण के रूप में लक्षणा—

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलो में
मेरे आंसू उन के हास।

—नीहार

फूलो में विकास, प्रसन्नता तथा ओस-बिंदू है, ये सब लक्षणा द्वारा ही स्पट होता है। प्रियतम से मूक मिलन कारण रूप में है। अतएव यहां कार्य कारण लक्षित होता है।

विरोध मूलक शब्दो के प्रयोग में लक्षणा—

शलभ मैं शापमय वर हूँ।
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।

—सांध्यगीत

वरदान और वह भी शापमय! जलना अवश्व ही शापमय है किंतु आलौकिक प्रियतम के लिए जलने में वरदान ही है। वेदना को वरदान मान कर कवयित्री ने स्वीकार कर लिया है। विशेषण-विपर्यय (Transferred epithet) के रूप में अंग्रेजी में यह एक अलकार है। यहां विशेषण के

परिवर्तन के कारण अर्थ में विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। वस्तुत. यह लक्षणा का प्रयोग विशेष ही है।

निद्रा उन्मन कर कर विचरण
लौट रही सपने संचित कर

—नीरजा

यहाँ 'उन्मन' विशेषण निद्रा के लिए प्रयुक्त हुआ जबकि यह व्यक्ति के लिए आना चाहिए था। व्यक्ति उन्मन होता है नीद नही। विशेषण के इस विपर्यय ने अर्थ को प्रभावपूर्ण बना दिया है।

पुलकित स्वप्नों की रोमावाली,
कर में हो स्मृतियों की अञ्जलि,

—नीरजा

व्यक्ति पुलकित होता है स्वप्न नही। नीहार की इन पक्तियो में यह प्रयोग आस्वादनीय है —

आखों की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागों में
ओठों की हसती पीड़ा में
आहों के बिखरे त्यागो में
कण कण में बिखरा है निर्मम
मेरे मानस का सूनापन

मानवीकरण (Personification) के रूप में—

मानवीकरण भी पाश्चात्य अलकार है। किंतु इसका प्रयोग संस्कृत साहित्य में पर्याप्त हुआ है। यह भी लक्षणा के अन्तर्गत है।

छायावादी काव्य में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'प्रकृति-चित्रण' वाले अध्याय में इसका स्पष्टीकरण हो चुका है। जब कवि निर्जीव जड वस्तुओ अथवा सूक्ष्म भावो की अभिव्यञ्जना मे ऐसे शब्दों

जागो बेसुध रात नहीं यह।
तुम्हें जगाने आई पीड़ा,
स्वप्नों का परिहास नहीं यह।

—नीरजा

यहाँ भी पीड़ित नारी (दुखी मानवता) आधार के लिए पीड़ा आधेय ही कथित है।

कार्य कारण के रूप में लक्षणा—

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलो में
मेरे आँसू उन के हास।

—नीहार

फूलो में विकास, प्रसन्नता तथा ओस-बिंदू है, ये सब लक्षणा द्वारा ही स्पट होता है। प्रियतम से मूक मिलन कारण रूप मे है। अतएव यहाँ कार्य कारण लक्षित होता है।

विरोध मूलक शब्दों के प्रयोग में लक्षणा—

शलभ मैं शापमय वर हूँ।
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।

—सांध्यगीत

वरदान और वह भी शापमय! जलना अवश्य ही शापमय है किन्तु आलौकिक प्रियतम के लिए जलने में वरदान ही है। वेदना को वरदान मान कर कवयित्री ने स्वीकार कर लिया है। विशेषण-विपर्यय (Transferred epithet) के रूप में अग्रेजी में यह एक अलकार है। यहाँ विशेषण के

परिवर्तन के कारण अर्थ में विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। वस्तुत यह लक्षणा का प्रयोग विशेष ही है।

निद्रा उन्मन कर कर विचरण
लौट रही सपने संचित कर

—नीरजा

यहाँ 'उन्मन' विशेषण निद्रा के लिए प्रयुक्त हुआ जबकि यह व्यक्ति के लिए आना चाहिए था। व्यक्ति उन्मन होता है नींद नहीं। विशेषण के इस विपर्यय ने अर्थ को प्रभावपूर्ण बना दिया है।

पुलकित स्वप्नों की रोमावाली,
कर में हो स्मृतियो की अञ्जलि,

—नीरजा

व्यक्ति पुलकित होता है स्वप्न नहीं। नीहार की इन पंक्तियों में यह प्रयोग आस्वादनीय है —

आँखों की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागों में
ओठो की हसती पीडा में
आहो के बिखरे त्यागों में
कण कण में बिखरा है निर्मम
मेरे मानस का सूनापन

मानवीकरण (Personification) के रूप में—

मानवीकरण भी पाश्चात्य अलकार है। किंतु इसका प्रयोग संस्कृत साहित्य में पर्याप्त हुआ है। यह भी लक्षणा के अन्तर्गत है।

छायावादी काव्य में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'प्रकृति-चित्रण' वाले अध्याय में इसका स्पष्टीकरण हो चुका है। जब कवि निर्जीव जड वस्तुओ अथवा सूक्ष्म भावो की अभिव्यञ्जना में ऐसे शब्दो

प्रयोग करता है जो चेतन प्राणियो के सम्बन्ध में किये जाते है तब वहाँ मानवीकरण हो जाता है। छायावादी कविता में बिम्ब-ग्रहण के लिये चित्रमयी भाषा का प्रयोग करते हैं। मानवीकरण में मूर्त प्रत्यक्षीकरण होता है अतएव इस का विधान छायावादियो में सहज रूप में ही हो जाता है। वैसे मानवीकरण सर्वात्मवादी दृष्टिकोण भी है।

प्रभावोत्पादकता में यह अलकार विशेष सहायक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

ओ विभावरी !
चाँदनी का अगराग,
माग में सजा पराग,
रश्मितार बाँध-मृदुल
चिकुर-भार री !

—नीरजा

प्रतीको के रूप में लक्षणा—

यह पतझर मधुवन भी हो।

शूलो का दशन भी हो,
कलियों का चुम्बन भी हो।

—नीरजा

यहाँ पतझर, तथा शूल दुख के और मधुवन, तथा कलियाँ सुख के प्रतीक है।

रहस्य-भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीको का प्रयोग प्रारम्भ से होता आया है। महादेवी ने भी प्रतीको का इतना अधिक प्रयोग किया है कि इनके बिना इन की काव्य-कला की कल्पना ही नही हो

सकती। कृतियों के नाम—रश्मि, नीरजा, दीपशिखा तक प्रतीकात्मक है। उनके चित्रो का आधार बहुत कुछ प्रतीक हैं। नीरजा की प्रथम कविता में ही 'नीरज' साधना-साध्य सात्विक भावनाओ, 'पक' तामसिक भावनाओं, 'सलिल' राजसिक भावनाओ तथा 'मधुप भीर' लौकिक मायाजाल के प्रतीक रूप में आया हैं। इसी प्रकार तारे लौकिक भावो के लिए, सागर ससार के लिए, पतवार साहस के लिए, जलचरवृन्द कुवासनाओ के लिए, नौका जीवन के लिए आए हैं। निम्न उदाहरण में कुछ प्रतीक स्पष्ट हो जायेंगे—

ग्रास करने नौका स्वच्छन्द घूमते फिरते जलचरवृन्द।
देखकर काला सिन्धु अनन्त हो गया हा साहस का अन्त।

यहाँ सागर के समान अनन्त ससार में कुवासनाएँ जलचरवृन्द के समान है जो जीवन की नौका को सहज स्थिति में नही रहने देते। किन्तु महादेवी में एक ही प्रतीक सदैव एक ही अर्थ में नही आता। अतएव कभी कभी अर्थ समझने में कठिनाई होती है। यथा शलभ को साधना विहीन मोहलिप्त व्यक्ति समझा है —

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल
झुलस कहाँ हो पाया उज्ज्वल
कब कर पाया वह लघु तन से
नव आलोक प्रसार !
ओ पागल ससार !

—नीरजा

सारे शीतल कोमल नूतन,
माग रहे तुझ से ज्वालाकरण,
विश्व शलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल' !
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

—नीरजा

६. मैं पलको मे पाल रही हू यह सपना सुकुमार किसी का
मैं कण कण मे ढाल रही अलि आसू के मिस प्यार किसी का
अपने तन पर भाता है अलि जाने क्यो शृ गार किसी का
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना ससार किसी का
—दी प०

दीपशिखा में चाहे अप्रस्तुत पहली कृतियो के ही हैं किन्तु विन्यास में नूतनता आ गई है। नीहार की कुछ कविताओं पर के 'आसू' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

महादेवी की आत्माभिव्यञ्जक सूक्ष्म-सश्लिष्ट भावनाओ की यता के लिए अलकार सहज-सहायक हुए है। ये केवल वाणी की वट के लिए नही, भावो की अभिव्यक्ति के लिये विशेष द्वार' तथा की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान' बन कर आये है। 'नव' दृष्टि कोण से ही छायावाद का उद्भव हुआ। इसलिए उपमा-उत्प्रेक्षाओं की 'दादुरावृत्ति' अथवा 'शुक प्रयोग' यहाँ नही हो सकता था। भावना नुकूल नूतन अप्रस्तुत विधान यहाँ मिलता है। उन्होने परम्परागत शुक-पिक, सिह-सर्प तथा ऐसे ही अन्य उपमानो को अन्तिम नमस्कार कर दिया। परम्परा-मुक्त अप्रस्तुतो में केवल रूप-रग के साम्य का विचार होता था। छायावादी कवियो ने प्रभाव-साम्य पर दृष्टि रखी है। निरन्तर आवृत्ति के कारण पुराने उपमान प्रभाव-शून्य हो गए थे। अतएव नवीन सौन्दर्यबोध के अनुकूल नूतन, परिपाटी-मुक्त, अलकारों का प्रयोग आवश्यक था। लक्षणा-व्यञ्जना के प्रचुर प्रसार से अनेक ऐसे परिपाटी-मुक्त प्रयोग दिखाई देते हैं कि परिपाटी-विहित काव्य में उनका नामकरण भी नही हुआ था।

शब्दालकारो में महादेवी ने अनुप्रास, वीप सा, तथा श्लेष का ही अधिक प्रयोग किया है। इनके काव्य में अनुप्रास और वीपसा कैसे सहज रूप में सौन्दर्य वर्द्धन करते है, यह हम देख चुके है। यहाँ अनु-

प्रास हमें ऐसा चमत्कृत नही करते, कि हमारी दृष्टि उनके रजत प्राश में उलझ कें रह जाए वल्कि भाषा के प्रवाह और लय मे वृद्धि होती हैं। अव 'श्लेष' के उदाहरण देखिए—

१. अघर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

२ सुरघनु नव रचतीं निश्वासें, स्मित का इन भीगे अघरों पर।
—नीरजा

इन दोनो पक्तियो में 'अघर' का अर्थ ओठ भी है और आकाश भी। यहाँ अर्थ में उत्कर्ष ही आया है। कहीं-कही यमक भी आगया है —

१. जगती-जगती की मूक-प्यास।
—नीरजा

२ 'सुधा' वसुधा में लाया एक।
—नीहार

३ हाला सी, हालाहल सी,
वह गई अचानक लहरी।
—नीहार

४ परिमल मल-मल जाता वत.स।
—साध्यगीत

महादेवी में अर्थालकार ही अधिक हैं। अर्थालकारो में भी उपमा, रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति, अधिक, विरोधाभास आदि उनको प्रिय है। उपमा अलकार साम्यमूलक अलकारो का सर्वस्व-शृ गार है। साथ ही यह वडा व्यापक हैं। इसलिए सभी कवि इसका प्रयोग करते है। महादेवी में भी उपमा का विशेष सौन्दर्य मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए—

दिशि का चचल
परिमल अ चल

६ मैं पलको में पाल रही हू यह सपना सुकुमार किसी का !

मैं कण कण मे ढाल रही अलि आसू के मिस प्यार किसी का
अपने तन पर भाता है अलि जाने क्यों शृ गार किसी का !
मेरे प्रति पग पर वसता जाता सूना ससार किसी का !
—दीपशिखा

दीपशिखा में चाहे अप्रस्तुत पहली कृतियो के ही हैं किन्तु शब्द-विन्यास में नूतनता आ गई है। नीहार की कुछ कविताओ पर प्रसाद के 'आसू' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

महादेवी की आत्माभिव्यञ्जक सूक्ष्म-सश्लिष्ट भावनाओ की प्रेषणीयता के लिए अलकार सहज-सहायक हुए है। ये केवल वाणी की सजावट के लिए नही, भावो की अभिव्यक्ति के लिये विशेष द्वार' तथा राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान' वन कर आये है। 'नव' दृष्टिकोण से ही छायावाद का उद्भव हुआ। इसलिए उपमा-उत्प्रेक्षाओ की की 'दादुरावृत्ति' अथवा 'शुक प्रयोग' यहाँ नही हो सकता था। भावनानुकूल नूतन अप्रस्तुत विधान यहाँ मिलता है। उन्होने परम्परागत शुक-पिक, सिंह-सर्प तथा ऐसे ही अन्य उपमानो को अन्तिम नमस्कार कर दिया। परम्परा-मुक्त अप्रस्तुतो मे केवल रूप-रग के साम्य का विचार होता था। छायावादी कवियो ने प्रभाव-साम्य पर दृष्टि रखी है। निरन्तर आवृत्ति के कारण पुराने उपमान प्रभाव-शून्य हो गएथे। अतएव नवीन सौन्दर्यवोध के अनुकूल नूतन, परिपाटी-मुक्त, अलकारो का प्रयोग आवश्यक था। लक्षणा-व्यञ्जना के प्रचुर प्रसार से अनेक ऐसे परिपाटी-मुक्त प्रयोग दिखाई देते है कि परिपाटी-विहित काव्य में उनका नामकरण भी नही हुआ था।

शब्दालकारो मे महादेवी ने अनुप्रास, वीप्सा, तथा श्लेप का ही अधिक प्रयोग किया है। इनके काव्य में अनुप्रास और वीप्सा कैसे सहज रूप में सौन्दर्य वर्द्धन करते है, यह हम देख चुके है। यहाँ अनु-

प्रास हमें ऐसा चमत्कृत नही करते, कि हमारी दृष्टि उनके रजत प्राश में उलझ के रह जाए वलिक भाषा के प्रवाह और लय मे वृद्धि होती हं। अव 'श्लेष' के उदाहरण देखिए—

१. अधर भी हूँ और स्मित की चांदनी भी हूँ।

२ सुरधनु नव रचतीं निश्वासें, स्मित का इन भीगे अधरों पर।

—नीरजा

इन दोनो पक्तियो में 'अधर' का अर्थ ओठ भी है और आकाश भी। यहाँ अर्थ में उत्कर्ष ही आया है। कही-कही यमक भी आगया है —

१ जगती-जगती की मूक-प्यास।

—नीरजा

२ 'सुधा' वसुधा में लाया एक।

—नीहार

३ हाला सी, हालाहल सी,
वह गई अचानक लहरी।

—नीहार

४ परिमल मल-मल जाता वत स।

—साध्यगीत

महादेवी में अर्थालकार ही अधिक हैं। अर्थालकारो में भी उपमा, रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति, अधिक, विरोधाभास आदि उनको प्रिय है। उपमा अलकार साम्यमूलक अलकारो का सर्वस्व-शृ गार है। साथ ही यह बडा व्यापक है। इसलिए सभी कवि इसका प्रयोग करते है। महादेवी में भी उपमा का विशेष सौन्दर्य मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए—

दिशि का चचल
परिमल अंचल

छिन्न हार से बिखर पडे सखि ! जुगनू के लघु हीरक के कण !

—नीरजा

छिन्नहार से हीरक कण जैसे बिखर पडते है वैसे ही जुगनू भी दिशा के अ चल में जगमगाने लगे। जुगनू की ज्योति अत्यत न्यून होती है किन्तु इस उपमान से उनकी ज्योति द्विगुणित और उनका टिमटिमाना स्पष्ट-सुन्दर हो जाता है। यहाँ उपमान भाववर्द्धन के साथ सौन्दर्य भी प्रदान करता है।

अव निम्न उदाहरण देखिए—

एक प्रिय-दृग-श्यामता सा
दूसरा स्मित की विभा सा
यह नही निशिदिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कहा !

—नीरजा

यहाँ रात प्रिय की आँखो की कालिमा तथा दिन प्रियतम की हँसी के प्रकाश के समान है। (वर्ण-साम्य है)। अतएव रात-दिन दोनो प्रियतम के उपहार स्वरूप है। यहाँ उपमान अत्यत भाव व्यन्जक सिद्ध हुए है क्योकि 'मधुर मुझ को हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले' के भाव को यह उपमान ही स्पष्टकर सका है। रात-दिन को प्रियतम के उपहार सिद्ध करने की यह अद्भुत रीति है। उपमा के अतिरिक्त क्रम और अपह्नुति का भी सौन्दर्य हैं।

अब 'साध्यगीत की वे उपमाएँ लीजिए जो उन की मूल भाव-धारा को व्यक्त करने में समथ हुई है —

सजनि मैं उतनी करुण हूँ करुण जितनी रात।

× × × ×

आँसुओं का क्षार पी मैं
बांटती नित स्नेह का रस !

सुभग मैं उतनी मधुर हूँ, मधुर जितनी प्रात !
ताप-जर्जर विश्व-उर पर
तूल से घन छा गये भर
दुःख से तप हो मृदुलतर
उमड़ता करुणा भरा उर
सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात !

त्यागमयी साधना के लिए दीपशिखा के निम्न उपमान कितने सार्थक हैं—

धूप सा तन दीप सी मैं।

यहाँ कर्म-साम्य है।

वैसे तो ऊपर के अनेक उपमानो से यह सिद्ध हो गया होगा कि महादेवी प्रभावसाम्य का कैसे ध्यान रखती है, नीरजा की इन पंक्तियो से और भी स्पष्ट हो जाएगा—

जिन प्राणों से लिपटी हो
पीडा सुरभित चदन सी,
तूफानो की छाया हो
जिस को प्रिय-आलिंगन-सी
जिसको जीवन की हारें
हों जय के अभिनन्दन सी

यहाँ कुछ स्पष्ट करने की आवश्यकता नही। क्योकि उपमान अपनी बात स्वय कह रहे है।

महादेवी ने कही-कही विरोधात्मक किंतु तुलनात्मक उपमानो का प्रयोग किया है। इनसे कितनी मार्मिक व्यञ्जना हो सकती है, 'रश्मि' की सारी उन्नीसवी कविता इस दृष्टि से पठनीय है। फिर भी कुछ पक्तियाँ लीजिए—

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही उपमेय के लिए चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त—मूर्त और अमूर्त, दोनो रूपो में उपमान लाए जाते है। जैसे—

नीलम सा तम सा हालाहल

—नीरजा

यहाँ हालाहल के लिए मूर्त नीलम और अमूर्त तम उपमान स्वरूप लाए गए है।

महादेवी में रूपको का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। नीरजा की १, २, ३, ९, ११, २३ आदि कविताओ में सागरूपको की रुचिरता दर्शनीय है। अव साध्यगीत का एक सागरूपक लीजिए—

प्रिय ! साध्यगगन
मेरा जीवन ।
यह क्षितिज वना धुंधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग।
छाया सी काया वीतराग ।
सुधिभीने स्वप्न रगीले घन ।

नीरजा क 'क्या पूजा क्या अर्चन रे' गीत का आरती का सागरूपक प्रशसा के योग्य है।

रहस्यवादी होने के कारण महादेवी को अन्योक्ति तथा समासोक्ति अलकार विशेप रूप से सहायक हुए है । समासोक्ति अलकार प्राय सकर तथा ससृष्टि रूप मे मिलता है—अ य अलकारो के साथ आया है, पृथक् रूप में कम। यथा नीरजा के निम्न उदाहरण में—

मृदुल म्र क घर दपण सा सर ।
आंज रही निशि दृग इन्दीवर ।

यहाँ निशा मानो नायिका है जो गोद में दर्पण रख, अपने नेत्रों को आँज रही है। 'दर्पण सा' में उपमा, दृग इन्दीवार मे रूपक तथा 'मृदुल अक' में रूपकातिशयोक्ति है। इन अलकारो की ससृष्टि के साथ, सारे छद में सभासोक्ति है।

अन्योक्ति अलकार में प्रस्तुत के प्रतिनिध स्वरूप अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत की ओर सकेत किया जाता है। लाक्षणिक प्रयोगो और अप्रस्तुत योजना में प्रभाव-साम्य पर बल देने के कारण, अन्योक्ति को रहस्यवादियो ने विशेष रूप से अपनाया है। साध्यगीत के दो गीतो—

१ शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूँ
२ कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो

में इस अलकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। नीरजा के 'टूट गया वह निर्मम दर्पण' गीत में भी यही अलकार है।

प्रेम के वक्र-जटिल अनुभवो तथा ससार में आत्मा की अनोखी स्थिति को व्यक्त-स्पष्ट करने में विरोधमूलक अप्रस्तुतो को महादेवी ने विशेष रूप से अपनाया है। नीरजा में विरोधाभास का चमत्कार-चातुर्य देखते ही बनता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

बिन्दु-बिन्दु ढुलने से भरता उर में सिन्धु महान,
तिल तिल मिटने से होता है चिर जीवन निर्माण।
न सुलझी यह उलझन नादान।

यहाँ जब अर्थ स्पष्ट हो जाता है तो विरोध की यह उलझन नही रहती। भौतिक जीवन के ह्रास से आध्यात्मिक जीवन का निर्माण होता है—अतएव यहाँ विरोधाभास है। वस्तुत विरोधाभास के ऐसे सार्थक रुचिकर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ हैं—

महादेवी का महत्व

आज के संघर्ष-संकुल युग में जहाँ केवल जीवन-निर्वाह की कठिनाई से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा ही प्रधान है, हृदय की वृत्तियों से शून्य अर्थ की निष्ठुर क्रीडा ही महान् है, महादेवी ने करुणा का आत्म-प्रसारक संदेश दिया है, उस करुणा का जो मनुष्य की प्रकृति में 'शील और सात्विकता का आदि संस्थापक मनोविकार' तथा मानवता का आधार है। करुणा के द्वारा ही विश्व जीवन में अपने जीवन को मिला, मानववादी भावनाओ को प्रश्रय दिया जा सकता है। इस ध्वंस-युग मे कल्याण-निर्माण का कार्य मनुष्यता, करुणा और भावना मूलक विश्वास से ही सम्भव है और यही महादेवी की देन है।

आज का जीवन सर्वथा अव्यवस्थित-विशृखलित है क्योंकि जीवन के किसी सिद्धान्त पर हमारा विश्वास स्थिर नही रहता, इस सर्वग्राही अविश्वास का परिणाम है जीवन-मूल्यो की अराजकता। ऐसी अवस्था में महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में ठीक ही लिखा है—"इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है, इसे मेरा हृदय ही नही मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होना है और अविश्वास का भी, परन्तु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा सजीव शरीर पर रखे हुए जड पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं।"

निस्सन्देह महादेवी में प्रतिभा की दृढता सर्वाधिक है। वे अपने साधना-पथ पर अटल हैं। साधना-मार्ग मे इतनी अनन्य निष्ठा और किसी कलाकार ने प्रदर्शित नही की। वस्तुत यह साधना की दृढता

प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है। जरा 'सान्ध्य गीत' तथा 'दीपशिखा' की ये पक्तियाँ देखिये—

१. मे सजग चिर साधना ले।

२. दीप मेर जल अकम्पित।
घुल अचचल।

३. प्राणों ने कहा कब दूर,
पग ने कब गिने थे शूल ?

४ पथ रहने दो अपरिचित,
प्राण रहने दो अकेला।

५ पूछता क्यो शेष कितनी रात ?
. ...।
मिल अरे वढ़, आ रहे यदि प्रलय झझावात।
कौन भय की वात ?

इसी दृढता के परिणाम स्वरूप इनकी काव्य-धारा का क्रमिक विकास हुआ है, जिस में किसी प्रकार की असगति नही। 'यामा' की भूमिका में लिखती हैं—"नीहार की सवसे पुरानी रचना सम्भवत 'उस पार' है। उसकी सहज भाव से लिखी—

विसर्जन ही है कर्णाधार।
वही पहुँचा देगा उस पार॥

आदि पक्तिया आज भी मेरे हृदय के उतनी ही निकट है जितनी तब थी। मानव को मानव की तुला पर गुरु होने के लिये स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पडता है, यह प्रश्न इतने दीर्घ काल में अनुभव के लम्वे पथ को पार कर स्वय उत्तर वन गया है, परन्तु इसके पहले रूप में निहित सत्य की मुझे फिर नवीन रूप में प्रतिष्ठा नही करनी पडी।" अब 'दीपशिखा' का यह अदम्य उत्साह देखिए

जो 'विसर्जन ही है कर्णाधार' का गौरवमय विकसित रूप है—

अब तरी पतवार ला कर।
तुम दिखा मत पार देना॥
आज गर्जन में मुझे बस।
एक बार पुकार लेना॥
ज्वार को तरणी बना मै इस प्रलय का पार पा लू

इस प्रकार आज की विस्फोटक परिस्थितियो में साधना की विश्वासमयी अविच्छिन्न-अप्रतिहत गति महादेवी का साधु सन्देश है।

आधुनिक रहस्यवादी कवियो में महादेवी का शीर्ष स्थान है, प्राय सभी आलोचको ने यह माना है। डा० नगेन्द्र जो महादेवी मे रहस्य-चितन देखते है, रहस्यानुभूति नही, वह भी यह स्वीकार करते है— "मै ममझता हूँ कि उनका काफी समय आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन और मनन मे वीता है। अतएव उनके गीतो मे जो रहस्य-सकेत मिलते है वे पूर्णत स्वानुभूत सत्य न होते हुए भी एक दम छायावाद-युग के कवि ममय मात्र भी नही है।"

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे 'सभी छायावादी रहस्यवादी नही है। रहस्यवादी के चित्त में किसी न किसी रूप में परम-प्रेममय परम आनन्दमय, लीला-निकेत, चिरन्तन प्रिय का विश्वास अवश्य होना चाहिये। दो प्रकार मे यह विश्वास आ सकता है—(१) चितन मनन मे और (२) भीतर की पीडा और व्याकुलता की अनुभूति के द्वारा। प्रथम श्रेणी के रहस्यवादी प्रसाद जी है, दूसरी श्रेणी में महादेवी प्रमुख है प्रसाद और महादेवी की कविताओ में रहस्य वाद की पूरी अभिव्यक्ति है। अन्य कवियो में या तो थी ही नहीं, या थी तो भी अस्पष्ट।"

इसी रहस्य-भावना द्वारा महादेवी ने स्थूल तथ्यो को भेद कर जीवन सत्य को देखने की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि दी है।

महादेवी ने रहस्यवाद को भी एक नूतन व्यवस्था दी हैं और उसकी परिधि का विस्तार किया है। इसमें मुरझाई कलियो का रुदन भी है और व्याकुल आत्मा का युग-युग से प्रवाहमान अधीर-नीर भी। इसमें 'उस पार' पर दृष्टि नही, 'इस भू' पर दृष्टि है। अलबेला-अलौकिक प्रियतम और कही नही रहता, कण-कण में बिखरा हुआ है, अतएव रहस्यवादी कवि को साधना की दृष्टि से, अपने प्रति वैरागी होकर ससार के कण-कण के प्रति अनुरागी होना है। अब रहस्यवादी मानव का आवास वह 'मुक्तिलोक' नही जहा उसकी गति अवरुद्ध हो जाये, वह 'भू' है जहाँ करुणा से गति अनन्त हो जाती है—

मैं गति विह्वल।
पाथेय रहे तेरा दृग जल॥
आवास मिले भू का अचल।
मै करुणा की वाहक अभिनव॥

—दीपशिखा

अलौकिक-आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा करुणा आदि कल्याणकारी भावनाओ को एक ओर रखकर यदि महादेवी के काव्य का आस्वादन किया जाये तव भी वह अपनी कसौटी पर खरा उतरता है। 'नीहार से दीपशिखर' तक एक ऐसी नारी के दर्शन होते है कि जिसमें एक विरहिणी प्रेमिका की विभिन्न भावना-कल्पना तथा आशा-निराशाएँ अकित हो गई हैं। विरहिणी प्रेमिका के भाव-सकल्पो की रामकहानी इस अपूर्व तथा मर्वाग रीति से स्पष्ट हो रही है कि 'हरिऔध' के इम कथन मे कोई अत्युक्ति नही दिखाइ देती—"स्त्री सुलभ भावों का चित्रण यथार्थ रीति से स्त्री ही कर सकती हैं। इन के पद्यो को पढ कर यह बात असदिग्ध हो जाती है।" निस्सन्देह महादेवी के पास एक वास्तविक नारी हृदय है। वस्तुत महादेवी के गीतो की मनो-रमता-सरसता का एक महत्वपूर्ण कारण लौकिक रूपक है, जो हमारे

जीवन के अधिक निकट है, चाहे इनके द्वारा आध्यात्मिक भावनाओ की अभिव्यक्ति हुई है ।

इन लौकिक रूपको में सरसता के साथ मर्यादा भी है । 'आधुनिक कवि' की भूमिका में महादेवी छायावाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता की ओर सकेत करते हुए लिखती है कि उसमें "वासना को विना स्पर्श किये जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को अ कित किया है" । निस्सन्देह महादेवी पर उनका ही कथन सर्वाधिक लागू होता है क्योकि उन्होंने स्त्रियोचित सात्विकता का कही त्याग नही किया ।

अनेक विद्वान् आलोचको के शब्दो में महादेवी के गीति-काव्य के महत्व और इस क्षेत्र में आधुनिक कवियो मे उनके शीर्ष स्थान को हम व्यक्त कर चुके है ।

प्रमुख छायावादियो में विधिवत अध्ययन यदि किसी ने किया है तो वह है महादेवी । अतएँव इनकी कला में जैसा स्वच्छ सौप्ठव है, वैसा दूसरो मे नही । पत, गुप्त और निराला का वागाडम्बर तथा भाषा-दोष महादेवी मे विरल है । इनमे कला विषयक सयम सर्वाधिक है । शातिप्रिय द्विवेदी के शब्दो में "कला का सौन्दर्य पत मे है, कला का प्राण महादेवी मे, कला का चमत्कार निराला मे "हमे इस कथन मे कोई अत्युक्ति नही दिखाई देती, पत मे कला की मीनाकारी अवश्य है किन्तु अनुभृति तत्व की दुर्वलता के कारण वह मार्मिक प्रभविष्णुता नही, जो महादेवी की कला में है । निराला ने विषय और कला मे विविध प्रयोग किये है, अतएव कला मे नूतनता जन्य चमत्कार मिलता है किन्तु वह परिष्कार और मार्मिकता नही मिलती जो महादेवी की पृथक् विशेपता है।

महादेवी अपनी प्रतिमा की सीमा से भली-भाँति अवगत है । अवगत ही नहीं, इसका कविता में प्रामाणिकता से पालन भी हुआ है । उन्ही के अनुसार—"साधारणत हमारे विचार विज्ञापक होते हैं ।

और भाव सङ्क्रामक, इसी से एक की सफलता पहले मननीय होने में है और दूसरे की पहले सवेदनीय-होने में। कविता अपनी सवेदनीयता में ही चिरन्तन है, चाहे युग विशेष के स्पर्श से उसकी बाह्य रूप रेखा में कितना ही अन्तर क्यो न आ जाये। और वह सवेदनीयता भाव पक्ष में ही अक्षय है" महादेवी में भाव पक्ष की रक्षा नि सशय हुई है। इस दृष्टि से इन्होंने पंत तथा निराला से अधिक सजगता का परिचय दिया है। यथा निराला के परिमल की 'कण' तथा गुन्जन की ९ १०. १२ १३ आदि कविताएँ देखी जा सकती है, जहाँ चिन्तन की चिंता ने कविता की कमनीयता को दवा दिया है।

महादेवी की महत्व की भी अपनी सीमाए हैं—इसका निषेध सम्भव नहीं। उसमें जीवन-जगत की समग्रता का ग्रहण—प्रतिभा की व्यापकता—कहाँ है ? पन्त प्रसाद, निराला इस दृष्टि से वहुत आगे है। जीवन के विभिन्न विरोधी तत्वो का चित्रण अथवा जीवन की अनेकरूपता यहाँ नही। सीमित क्षेत्र होते हुए भी महादेवी युग-युग की कवयित्री वनी रहेगी। मीरा के वाद पीडा को इतने सुन्दर मधुर रूप में कौन रूपायित कर सका है ? स्थूल समस्याओ को हल करने का प्रयास महादेवी ने नही किया किन्तु इन समस्याओ के समाधान के लिए जिस भावात्मक प्रेरणा की आवश्यकता होती है, उसकी कमी यहाँ नही। एक तो मानवता की रक्षक मुलवृत्ति करुणा का चित्रण हुआ है, दूसरे काव्य की आत्मा-रस-की रक्षा हुई है, जिस के कारण ही साहित्य देश काल से ऊपर उठ कर समाज की रागात्मक भावनाओ को आन्दोलित—परिष्कृत करता रह सकता है। तीसरे इनके गीतो का कलात्मक सौष्ठव हमारे साहित्य का सदैव शृ गार वना रहेगा।

यदि कवयित्रियों की दृष्टि से देखा जाये तो महादेवी आधुनिक युग ही नही, समस्त भारतीय वाङ्-मय की श्रेष्ट कवयित्री है। छायावाद की वृहत्त्रयी की शोभा महादेवी के साथ ही है, नहीं तो इसकी वह तरलता और मिठास कहाँ रहती जो अव है।

नीरजा का महत्व

महादेवी की कृतियो में 'नीरजा' सर्वोत्कृष्ट है। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते है—

१ 'नीहार' और 'नीरजा' में अनुभूति की तीव्रता सर्वाधिक है, 'सान्ध्यगीत और दीपशिखा' में यह तीव्रता क्रमश कम होती गई है, 'रश्मि मे भी दार्शनिकता का आग्रह अधिक है। 'नीहार' प्राथमिक प्रयास है इसलिये 'नीरजा' का महत्त्व अधिक है। नीरजा में साध्यगीत और दीपशिखा से तीव्रता क्यो अधिक है, इसका उत्तर पन्त की 'स्वर्ण धूलि' और 'स्वर्ण किरण' के सम्बन्ध में कहे हुए महादेवी ही के इस कथन मे स्पष्ट है—"आरम्भ की लिखी हुई चीजो में भाव-पक्ष कुछ अधिक रहता ही है, बाद में चिंतन-पक्ष की बहुलता हो जाती है।" निसन्देह पन्त की प्रारम्भिक कृतियो—ग्रन्थि और पल्लव जैसी अनुभूति बाद की रचनाओ में दिखाई नही पडती। यही अवस्था महादेवी की है। डा० नगेन्द्र ने इस तीव्रता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार किया है—"नीहार से लेकर 'दीपशिखा' तक आते-आते महादेवी की अनुभूति ने सूक्ष्मता और स्थिरता में जितनी वृद्धि की है, तीव्रता मे उतनी क्षति भी भोगी है। इसका अर्थ यही है कि महादेवी जी का मन क्रमश व्यक्तिगत पीडा को लोकव्यापी बनाता हुआ सुख-दुख का सामञ्जस्य स्थापित करता रहा रहा है और यह सामञ्जस्य सर्वप्रथम हमें 'नीरजा' में मिलता है, परन्तु फिर भी उसमें व्यक्ति की पुकार दुर्बल नही पडी। 'सान्ध्य गीत' में आकर जिस अनुपात से पीडा का अव्यक्तिकरण हुआ है, उसी अनुपात से उसमें अनुभूति की तीव्रता भी कम हो गई है, 'दीपशिखा' इसी दशा

मे एक अगला कदम है। 'सान्ध्य गीत' में जहाँ दु:ख और सुख का सामञ्जस्य पूर्ण हुआ हुआ था, वहाँ 'दीप-शिखा' में दु:ख अपना दर्शन खोकर सुख को समर्पण कर बैठा है।" डा० साहब का उक्त कथन मुझे कुछ सीमाओ में ही मान्य है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, व्यक्तिगत अभाव को प्रबल प्रभाव के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, मूल के रूप में नही। किन्तु व्यक्तिगत अभावो का काव्य की तीव्रता से घनिष्ठ सम्बन्ध तो रहता ही है।

२ गीति-काव्य की दृष्टि से भी 'नीरजा' ही सर्वोत्कृष्ट कृति है। एक तो नीरजा में अन्य कृतियो से लोक गीतो का सस्पर्श अधिक है, दूसरे इसमें सगीत की दृष्टि से विविध मनोज्ञ मनोरम प्रयोग मिलते है।

३ नीरजा का चित्र फलक 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा' से विस्तृत है। 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा में चित्रो का वातावरण निश्चित-सा है, 'नीरजा' में पर्याप्त विविधता है। काव्य-सामग्री सीमित होने के कारण 'सान्ध्य गीत' और दीप शिखा में पुनरावृत्ति का आभास मिलने लगता है जो रोचकता में बाधक सिद्ध होता है।

४ महादेवी ने अपनी रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति लौकिक रूपको द्वारा की है। और इनकी रुचिरता-सरसता सर्वाधिक नीरजा में है।

मे एक अगला कदम है। 'सान्ध्य गीत' में जहाँ दुःख और सुख का सामञ्जस्य पूर्ण हुआ हुआ था, वहाँ 'दीप-शिखा' में दुःख अपना दशन खोकर सुख को समर्पण कर बैठा है।" डा० साहब का उक्त कथन मुझे कुछ सीमाओ में ही मान्य ह। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, व्यक्तिगत अभाव को प्रवल प्रभाव के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, मूल के रूप में नही। किन्तु व्यक्तिगत अभावो का काव्य की तीव्रता से घनिष्ठ सम्वन्ध तो रहता ही है।

२ गीति-काव्य की दृष्टि से भी 'नीरजा' ही सर्वोत्कृष्ट कृति है। एक तो नीरजा में अन्य कृतियो से लोक गीतो का सस्पर्श अधिक है, दूसरे इसमें सगीत की दृष्टि से विविध मनोज्ञ मनोरम प्रयोग मिलते है।

३ नीरजा का चित्र फलक 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा' से विस्तृत है। 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा में चित्रो का वातावरण निश्चित-सा है, 'नीरजा' में पर्याप्त विविधता है। काव्य-सामग्री सीमित होने के कारण 'सान्ध्य गीत' और दीप शिखा में पुनरावृत्ति का आभास मिलने लगता है जो रोचकता मे वाधक सिद्ध होता है।

४. महादेवी ने अपनी रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति लौकिक रूपको द्वारा की है। और इनकी रुचिरता-सरसता सर्वाधिक नीरजा में है।